

बलिदान

[चन्द्रशेखर आज़ाद की रोमांचकारी जीवनी]



लेखक
नन्दकिशोर निगम

© नन्दकिशोर निगम
४२६, एस्प्लेनेड रोड,
दिल्ली-६

मूल्य : चार रुपये

मुद्रक : नया हिन्दुस्तान प्रेस, चांदनी चौक, दिल्ली-६

समर्पण

देश को स्वतन्त्र हुए २१ वर्ष से अधिक बीत चुके हैं। परन्तु क्या यही स्वतन्त्रता थी जिसका देशवासी स्वप्न देखा करते थे, जिसके लिए सैकड़ों युवकों और युवतियों ने अपना बलिदान दिया था, हजारों देशवासियों ने अनेक कष्ट भेले थे, जेलों में सड़े थे ? क्या यही स्वतन्त्रता थी जिसको महात्मा गांधी ने अपना लक्ष्य बनाया था या जिसको स्वाधीनता से पहले कांग्रेस ने कितने ही प्रस्तावों द्वारा अपना ध्येय निश्चित किया था और ठके की चोट पर ऐलान किया था ?

इन २१ वर्षों में निश्चय ही कुछ लक्षपत्ती करोड़पति हो गये, कुछ हजारपत्ती लक्षपत्ती हो गये। परन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि लाखों जन अधिक गरीब हो गये ? आज उनके खाने को अनाज नहीं है, पहनने को वस्त्र नहीं है, सोने के लिये सड़कों के फुटपाथों के अतिरिक्त और कोई सुरक्षित स्थान नहीं है। रोगियों के लिए इलाज का पर्याप्त प्रवन्ध नहीं है। बेरोजगारी का बाजार बढ़ता ही जा रहा है।

प्रत्यक्ष है कि स्वतन्त्रता आई परन्तु वह स्वतन्त्रता नहीं जिसके लिये हम लोगों ने युद्ध किया था, फासियों पर लटके थे, जेलों में तथा अण्डमान की काल कोठरियों में बेडियों सहित कष्ट सहें थे। हमारा तो लक्ष्य था जनतन्त्र समाजवाद। वह तो अभी भी कासी दूर है। इस प्रकार स्वतन्त्रता का युद्ध समाप्त नहीं हुआ है और यह युद्ध तब तक चलाना होगा जब तक पूर्णतया जनतन्त्र समाजवाद देश में स्थापित न हो जाय।

चन्द्रशेखर आज़ाद ने इसी लक्ष्य को लेकर अपना जीवन बलिवेदी पर न्योछावर कर दिया था। इन हजारों लाखों बलिदानों को यदि व्यर्थ ही जाने

दिया तो उसकी जिम्मेदारी आजकल के युवक-युवतियों पर होगी और आगे आने वाली पीढ़ी उनको कभी क्षमा नहीं करेगी ।

परन्तु मैं युवक-युवतियों को अच्छी प्रकार समझता हूँ । ठीक है आज उनके सम्मुख सही पथ-प्रदर्शक नहीं है । हम तो सभी अब वृद्ध हो चुके हैं और अपने जीवन की अन्तिम सीढ़ी पर बैठे पल और घड़ी गिन रहे हैं । परन्तु इस पुस्तक द्वारा मैं उनके सामने एक जीवनी रख रहा हूँ जो शायद उनका कुछ अंशों में पथ-प्रदर्शन कर सके । इसीलिये मैं यह पुस्तक आज के और आने वाले युवक और युवतियों को समर्पित कर रहा हूँ ।

—एन० के० निगम

लेखक की ओर से

मेरा जन्म ८ दिसम्बर, १९०६ में दिल्ली में हुआ था। जब मैं दो वर्ष का था, पिता का निधन हो गया था। माता भी मुझे ११ वर्ष की आयु के लगभग निस्सहाय छोड़कर स्वर्गवास हो गई थी। परन्तु मरने से पहले मेरी माता ने मेरे जीवन को कुछ उसूलों पर ढाल दिया था। इन्हीं उसूलों के कारण और कुछ अपनी बड़ी बहन की सहायता से, कुछ स्कूल और कालेज के शिक्षकों की मदद से और कुछ स्वयं दयूषणों करके मैंने अपनी शिक्षा जारी रखी।

१९१६ में महात्मा गांधी का स्वाधीनता आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। शायद ही कोई युवक होगा जो उस आन्दोलन से प्रभावित न हुआ हो। मेरे जीवन पर तो उसकी गहरी छाप पड़ी। परिणामतः उस समय के स्वाजटों में मैंने कम-से-कम तीन बार सही रास्ते पर लाने में सफल काम किया।

कालेज में आकर भी मैंने राजनैतिक क्षेत्र में अपना काम जारी रखा। उस समय के जलूसों की कई बार अगुवाई भी की। दिल्ली में साइमन कमीशन के विरोध में भी मेरा थोड़ा-सा हाथ था।

संस्कृत स्कूल के हेडमास्टर—मास्टर अजमतसिंह के कहने पर मैंने राजनैतिक कार्य-क्षेत्र को छोड़ दिया और यमुना के किनारे अपनी एम० ए० की परीक्षा की तैयारी करने लगा। परन्तु वही मेरा क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध जुड़ा। एम० ए० पास कर मैं हिन्दू कालेज में अध्यापक नियुक्त हो गया। होस्टल का सुपरिन्टेण्डेण्ट भी नियुक्त हुआ। वहाँ मेरे साथ पहले तो कलाशपति रहता रहा परन्तु २२ दिसम्बर, १९२६ से चन्द्रशेखर आजाद मेरे पास रहने लगे। यहाँ जो क्रान्तिकारी मेरे कमरे में आये और जिनसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया उनमें से कुछ थे : चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण वोहरा, यशपाल,

कैलाशपति, भवानीसिंह, काशीराम, भवानीसहाय, विमलप्रसाद जैन, वैशम्पायन, पनवन्तरी आदि ।

२२ मार्च, १९३० को रोगी होने के कारण मैं अपनी बहन के घर आ गया । यहाँ भी सभी ऊपर वर्णित प्रान्तिवारी मुझसे मिलते रहे । कुछ समय पश्चात्, भाभी (दुर्गादेवी चोहरा) और दीदी (सुशीला मोहन) के भी सम्पर्क में आ गया ।

सितम्बर १९३० में मैं सुशीला दीदी के साथ पण्डित जी से कानपुर में मिला और उनकी आज्ञानुसार उसी महीने के अन्त में भाभी तथा दीदी को अपने साथ दिल्ली लाकर दिल्ली के क्षेत्र का भार सभाल लिया ।

कैलाशपति २८ अक्टूबर, १९३० को पकड़ा गया । दूसरे ही दिन में उसने ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया । आज़ाद की आज्ञानुसार मैंने दिल्ली छोड़ दी । भाभी तथा दीदी तो लाहौर चली गईं और मैं कानपुर, जहाँ मैं आज़ाद के साथ ही रहने लगा । वैशम्पायन भी हमारे साथ रहता था ।

४ दिसम्बर को मैं कानपुर गया प्रसाद पुस्तकालय में पकड़ा गया । एक सप्ताह पुलिस ने मुझे छावनी के घाने में रखा जहाँ उनके अमानुष व्यवहार के होते हुए भी पुलिस मुझसे कुछ भी दल के सम्बन्ध में जानकारी न प्राप्त कर सकी । एक सप्ताह बाद मुझे कानपुर जेल में भेज दिया गया, जहाँ पाव में बेडिया डालकर मुझे एक महीने एकान्तवास (Solitary Cell) में रखा । खाना सी क्लास का मिलता था जो मैं खा नहीं पाता था । जब एक महीने पश्चात् मुझे दिल्ली ले जाया गया तो प्रातः ६½ बजे ही कचहरी में मैं बेहोश हो गया और जब ३½ बजे दोपहर मुझे होश आया तो मैं दिल्ली जेल में था ।

पड़्यन्त अभियोग फरवरी १९३३ में सरकार ने लौटा लिया और मुझे कानपुर में आर्म्स एक्ट में १६ फरवरी, १९३३ को दो वर्ष का कठोर कारावास की सजा मिली । एम० ए० पास और एक कालेज का अध्यापक होते हुए भी मजिस्ट्रेट ने मुझे सी क्लास में रखा । जेल में मुझे फिर एक बार बेडिया पहना दी गई । मेरे छ दिन की भूख हडताल के पश्चात् जेल अधिकारियों ने मुझे गोडा जेल में भेज दिया जहाँ मैं लगभग एक वर्ष बेडियों समेत एक काल-कोठरी में पड़ा सड़ता रहा । उस समय मेरे बचने की कोई आशा नहीं थी । लगभग एक वर्ष पश्चात् मुझे वी क्लास देकर बनारस सेण्ट्रल जेल भेज दिया

गया। वहाँ बानपुर के हनदर घात्रपेयी, असोसकुमार धीम और सत्गुरुदयाल अवस्थी पढ़ने में ही अपनी-अपनी मजा बांट रहे थे।

गोडा के बागवाम में मुझे आनो का तपेदिन हो गया था। बनारस में यह कुछ बड़ता हो गया और अगस्त १९३४ में सरकार ने मुझे छोड़ दिया।

बाहर आने पर पहले मैंने अपना इनाज बराया और फिर राजनैतिक क्षेत्र को छोड़ टाटा की नौकरी कर ली। १९४१ में मैंने अपना निजी कारोबार दिल्ली में प्रारम्भ कर दिया।

कहते हैं कि स्वाधीनता के युद्ध में जिन्होंने कभी एक बार भी ईमानदारी और समनता में काम किया हो वह स्वाधीनता के पाने तक इस युद्ध में विरक्त नहीं हो सकता। कम-से-कम मेरे माथे को ऐसा ही हुआ। हमारे विद्रोहयुद्ध में १९४२ के प्रारम्भ में अंग्रेजों की हानि रहना थी। जापान आगे बढ़ता ही चला आ रहा था। अंग्रेज शासकों ने भारत को निम्नहाथ छोड़ अपने भागने की पूरी तैयारी कर ली थी। कांग्रेस के नेताओं के सामने एक बड़ा बड़ी समस्या थी, अंग्रेजों के भारत छोड़ने पर किसी प्रकार जापान अपना स्वामित्व भारत पर न जमा ले।

लगभग बन्द-सा हो गया था, पुनर्संगठित किया। ६ अगस्त, १९४४ को दो वर्षों के बाद पहली पब्लिक मीटिंग दिल्ली के गांधी मैदान में हुई जिसका मैं प्रधान था और दूसरे वक्ता थे गोपीनाथ अमन और मौलाना हिफीजुर्रहमान।

इस सभा की सफलता के कारण कांग्रेस का पुनर्संगठन कुछ आसान हो गया। परन्तु इससे अवसरवादियों को भी आगे आने का अवसर मिल गया। चूँकि मैं अपने जीवन में कभी अवसरवादी नहीं रहा, मैं दिल्ली छोड़ बम्बई चला गया।

१९५७ में मैं यूनिन पब्लिक सर्विस कमिशन द्वारा फौरेन पोस्टिंग के लिए चुना गया। मैं पहले पाकिस्तान में तीन वर्ष कराची-स्थित फर्स्ट सेक्रेटरी कमर्शल रहा और उसके पश्चात् कुवैत में ट्रेड कमिश्नर तथा काउन्सिल जनरल नियुक्त हुआ। इस पोस्ट से मैं १९६२ के दिसम्बर में रिटायर हो गया।

१८३७ में मुगलों का अन्तिम राजा बहादुरशाह जफर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसके सिंहासन पर बैठने में अंग्रेजों ने उसकी सहायता की थी। वह वृद्ध था। शेर और शायरी में व्यस्त अपने अन्तिम दिन आराम के साथ व्यतीत करना चाहता था। परन्तु देश भ्रम में आराम कहा था? जहाँ एक ओर अंग्रेजी फौज के भारतीय सैनिक अंग्रेजों की क्रूर जाति भेद की नीति से तग आ चुके थे और प्रस्तुत थे कि समय आने पर वे अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर देंगे, दूसरी ओर आम जनता भी अत्यन्त दुःखित थी। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही तग थे। अंग्रेजों के मशीनों द्वारा तैयार किए हुए माल ने भारत के छोटे-छोटे धन्धों का अन्त कर दिया था जिससे लाखों लोग बेकार हो गए थे। भारत के किसानों से उनकी जमीन, जो हजारों वर्षों से उनकी अपनी ही थी, छीन कर रुपये वालों को बांट दी गई थी। वे सभी भारतीय जो मुगलों तथा अन्य भारत के राजाओं के दरबारों में नौकरियाँ करते थे, अपनी नौकरियाँ और धन्ये खो बैठे थे। सुलभ और शीघ्र न्याय करने वाले भारतीय न्यायालयों को अंग्रेजी अदालतों में बदल दिया गया था जहाँ रिश्वत का बाजार गर्म था और जहाँ रुपये से निर्णय खरीदा जा सकता था। एक भद्र पुरुष के लिए अदालत में जाना मौत से भी बुरा समझा जाने लगा था। सबसे अधिक धक्का तब लगा जब अंग्रेजों ने हिन्दू और मुसलमानों को ईसाई बनाना आरम्भ किया। ऐसे ईसाइयों को विशेष अधिकार दिए जाने लगे। महारानी विक्टोरिया ने १८५४ में उस समय के अपने वायसराय लार्ड डलहौजी को २४ नवम्बर को अपने पत्र में लिखा था “भारत में रेलों के चालू (Introduction) होने से बहुत अन्तर हो जाएगा। इसकी सहायता से भारतीयों को सम्य बनाना जा सकेगा और सम्य बन कर सभी भारतीय ईसाई बनाए जा सकेंगे।” जैसे कि वे सब लोग जो ईसाई नहीं थे, असम्य थे।

हिन्दू तथा मुसलमानों को यह बहुत ही बुरा लगा और उन्होंने भारतीय सैनिकों से मिल भारत की पहली स्वतन्त्रता की लड़ाई १८५७ में छेड़ दी। वह लड़ाई क्यों असफल हुई उसके कारण इस पुस्तक में नहीं दिए जा सकते। परन्तु उस विफलता का एक घोर परिणाम था अंग्रेजों का हिन्दू और मुसलमानों को पृथक्-पृथक् रखना और एक दूसरे को लड़ा कर अपना प्रभुत्व जमाए रखना। यह पालिसी तथा अंग्रेजों का प्रभुत्व लगभग ६० वर्ष तक चला और १९४७ में भारत के दो टुकड़े करके ही समाप्त हुआ।

परन्तु जब किसी भी गुलाम देश में एक बार स्वाधीनता की अग्नि की

ज्वाला जल जाती है, तब वह पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हुए बिना बुझा नहीं करती। अमरीका में अंग्रेजों के विरुद्ध जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में जीता हुआ युद्ध, इटली में मेज़िनी और गेरीवाल्डी के नेतृत्व में आस्ट्रिया के विरुद्ध सग्राम तथा इसी शताब्दी में आयरलैण्ड का डीवेलरा आदि सिनफाइन नेताओं का अंग्रेजों से लड़ कर स्वाधीनता प्राप्त करना, कुछ उदाहरण अपने सामने हैं। भारत में भी गेरीवाल्डी और डीवेलराओं की कमी नहीं रही है। खुदीराम बोस, लाला हरदयाल, मंडम कामा, वीर सावरकर, कृष्णमोहन मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी, रासबिहारी बोस, पिंगले, करतार सिंह आदि मकड़ों व्यक्तियों ने अपने तन, मन और धन तथा परिवारों को त्याग कर अपने को स्वाधीनता के सग्राम में भोक दिया और स्वराज्य के मन्त्र का जाप करते हुए या तो गोलियों का शिकार बन गये या हसते-हसते फासी के तख्ते पर चढ़ गए। जान गई पर आन रख ली। १९२७ में रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिरी और रोजनसिंह भी ऐसी ही लड़ाई लड़ते हुए ब्रिटिश साम्राज्य की फासियों के शिकार हुए और अशफाक उल्लाह ने फासी के तख्ते पर उनका साथ देकर समार को बता दिया कि भारत के सभी मुसलमान अंग्रेजों की क्रूर नीति का साथ नहीं दे रहे थे।

इन्हीं आन पर मिटने वालों में मे श्री चन्द्रशेखर आज़ाद एक अभूतपूर्व व्यक्ति थे जिन्होंने अपने छोटे से जीवन में अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ों को समस्त भारत में हिला दिया और लगभग छ साल उनको चैन की नींद नहीं सोने दी। इस छोटी-सी पुस्तक में इन्हीं महापुरुष की छोटी किन्तु अति महत्वपूर्ण जीवनी का संक्षिप्त उल्लेख है। संक्षिप्त इस कारण कि उनके सम्बन्ध में किसी भी एक या एक से अधिक व्यक्तियों को अधिक मालूम नहीं है। मुझे जितना मालूम है और जो उन्होंने मुझे मेरी बीमारी में मेरे साथ रहते-रहते कभी-कभी सुनाया था, वही इस पुस्तक में प्रस्तुत है। जो कुछ अन्य साधियों से ज्ञात हुआ है वह भी मधोप में इस पुस्तक में शामिल कर लिया है।

आज़ाद और मैं

१९२८ में जब मैं एम० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहा था, बुधनियाघाट के जमना के किनारे रामनहर धी बानों के पक्के घाट के एक कमरे में रहा करता था। पाम ही के लाला लछमनदास के घाट में कुछ और विद्यार्थी भी रहा करते थे। उनमें एक काशीराम भी था जो उस समय एम० ए० के प्रथम वर्ष में था। यह प्रायः मेरे पाम आकर अंग्रेजी आदि सीखता था। बाल्योप में भारत की स्वाधीनता, अंग्रेजों की क्रूरता आदि पर भी विचार-

विमर्श होता रहता था। एक दिन उसके साथ एक नया व्यक्ति आया, जिसका कद छोटा, रंग काला और गोल चेहरा था। काशीराम ने उसको अपना एक मित्र बताया और कहा कि वह भी अध्ययन कर रहा है और उसके ही साथ रहेगा।

उस दिन से वह भी कभी-कभी मेरे पास आने लगा और बातचीत में भाग लेने लगा। कुछ दिन पश्चात् वह वहाँ से चला गया। थोड़े ही दिन बाद काशीराम मेरे पास आया और उस व्यक्ति का हवाला देते हुए बोला कि कुछ दिन पहिले वह दो और व्यक्तियों को अपने साथ लाया था जो मुझसे भी मिले थे। वे दोनों व्यक्ति आत्मिकारी काम करते हुए सहारनपुर में पकड़े गये हैं और हो सकता है कि वे काशीराम का तथा मेरा नाम और पता भी दे दें। मुझे होशियार रहना चाहिए। मैं सतर्क तो हो गया, परन्तु यदि मेरा नाम वे लोग ले भी देते तो मैं कर ही क्या सकता था। हाँ, स्वाधीनता पर वहस के अतिरिक्त मेरा उनसे और कोई नाता नहीं था। खैर उन दोनों व्यक्तियों ने जिनका नाम शिव वर्मा और जयदेव कपूर था, मेरा या काशीराम का नाम नहीं लिया। वह जो काला व्यक्ति था वह कैलाशपति था जिसका उस समय दल का नाम शीतलप्रसाद था।

कुछ दिन बाद कैलाशपति फिर वहाँ आकर मुझे मिला और कहा कि वह अब कहीं बाहर, शायद ग्वालियर जा रहा है। वह चादनी रात में मुझे मिला था और मुझे स्मरण है मैंने उसको कहा था “शीतल, तुम तो चादनी रात में एबोनाइट की तरह चमक रहे हो।” उसको बहुत बुरा लगा था और उसने मेरी बुराई काशीराम से की थी।

१९२६ में कैलाशपति फिर दिल्ली आ गया और दिल्ली के दल का भार सभाल कर उसके संगठन में जुट गया। वह मुझसे भी यदा-कदा मिलता रहा। अक्टूबर १९२६ में मैं हिन्दू कालेज में लेक्चरर नियुक्त हो गया और साथ ही होस्टल का सुपरिटेण्डेण्ट भी। यह होस्टल ४ रामचन्द्र लेन, मेटकाफ हाउस रोड पर स्थित था। वहाँ मेरे पास एक बड़ा और एक छोटा कमरा था और साथ ही बाथ रूम। मेरे वहाँ जाने के पश्चात् कैलाशपति भी मेरे पास ही आकर रहने लगा।

उत दिनों काशीराम पढ़ाई में व्यस्त था जिसमें भगवत्सिंह आदि अभियुक्त थे। वेम समाचार-पत्रों में पूर्ण रूप से प्रकाशित किया जाता था और प्रत्येक मुन्नाजी गवाह पण्डित चन्द्रदेव की बीरता, अचूक निशानेबाजी और

उनके भव्य नेतृत्व (लीडरशिप) की बड़ाई करता था। लोग पण्डित जी से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक पाये जाते थे। उन उत्सुको में मैं भी एक था। मैंने कई बार कैलाशपति से कहा था कि यदि पण्डित जी दिल्ली आए, तो वह उनसे मुझे अवश्य मिलवाए। कैलाशपति कुछ उत्तर नहीं देता था।

२२ दिसम्बर १९२६ की बात है। मैं जब कालेज से होस्टल लगभग ३ बजे लौटा तो मैंने देखा कि मेरे बड़े कमरे में चार व्यक्ति आपस में घुलमिल कर बात-चीत कर रहे हैं। उनके व्यवहार से ऐसा प्रतीत हुआ कि वे किसी गम्भीर आशय पर विचार या वाद-विवाद कर चुके थे, उन सभी के मुख गम्भीर थे। मेरे वहाँ पहुँचने पर तीन व्यक्ति तो चले गये परन्तु एक भारी-भरकम हूँट-पुँट लगभग २२-२३ वर्ष का व्यक्ति वहीं रहा। वह सफेद धोती, आधी बाहों वाली सफेद कमीज तथा एक ठण्डा कोट और पाव में चप्पल पहने हुए था। उसने मुझे देखकर नमस्कार किया और मैंने भी उसको नमस्कार किया। थोड़ी देर बाद कैलाशपति आया और मुझे छोटे कमरे में ले जाकर बोला—“तुम पण्डित जी से मिलने के उत्सुक थे न, आज मैं तुम्हें पण्डित जी से मिलवा रहा हूँ। तुम इसी कमरे में ठहरो।” मैंने समझा पण्डित जी कैलाशपति के साथ वही बाहर से आये हैं। मेरी कल्पना में वह बड़े कद के लम्बे-चोड़े शरीर वाले तथा सूट-बूट से सुसज्जित होने थे। एक ही मिनट बाद वही सज्जन जिन्होंने मुझे नमस्कार किया था, उस कमरे में आये और बोले “आप मेरे से मिलना चाहते थे। मैं ही पण्डित जी हूँ।” मैं उनको देखकर अवाक् रह गया। गला भर आया। आँखों में पानी आ गया। मैंने लपक कर उनके पाव छुए। उन्होंने तुरन्त ही मुझे उठा अपने गले से लगा लिया और बोले कि अब हम तुम्हारे पास ही रहेंगे।

उस दिन से वह मेरे साथ मार्च १९३० के अन्त तक रहे। १४ फरवरी को मुझे टाइफाइड का रोग हुआ। वह ३२ दिन तक चला। एक दिन ज्वर उतरा और फिर रिलैप्स हो गया और कई महीने चला। पण्डित जी मेरी सारी बीमारी में, जब तक मैं होस्टल में रहा, मेरी तीमारदारी करते रहे। डाक्टर बोम के यहाँ से दवाई लाते रहे। यही वे दिन थे जब कभी-कभी वह अपने जीवन की पुरानी बातें बताते थे। वह कभी धारावाहिक रूप में नहीं बताईं। कभी कोई बात और कभी कोई। यही कारण है कि पण्डित जी की इस जीवनी में पाठको को बड़ी स्थान ऐसे मिलेंगे जिनमें उनकी जीवनी का उल्लेख नहीं हो पाया है। तब भी जो कुछ उन्होंने मुझे अपनी जवान से बताया

मैं उसी को इस पुस्तक में पाठकों के सामने रख रहा हूँ। मेरे अपने पकड़े जाने (४ दिसम्बर, १९३०) से लेकर उनके जीवन के अन्तिम दिन (२७ फरवरी १९३१) तक का हाल मैंने कुछ तो समाचार-पत्रों से एकत्रित किया है, परन्तु अधिकतर वह मुझे १९३२ में यशपाल और सुखदेव राज ने बताया था जो दोनों पण्डित जी के साथ अन्तिम समय में थे। मुझे खेद है कि यशपाल ने अपने सिंहावलोकन में उस अन्तिम समय को एक भिन्न रूप दे दिया है। परन्तु मैं तो अपनी स्मरण-शक्ति को नहीं भुला बैठा हूँ। मेरे हृदय के पट पर पण्डित जी की हर एक बात जो उन्होंने कही या किसी दूसरे ने सुनाई, अंकित है, और वही मैं इस पुस्तक में लिख रहा हूँ।

यहाँ मैं यह बता देना उचित समझता हूँ कि पण्डित जी के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ फैली हुई हैं। कुछ लोगों ने उनके सम्बन्ध में पुस्तकें भी लिखी हैं जिनमें इन लोगों ने पण्डित जी से अपनी घनिष्टता खूब रगी है। मैं यह कहने में असमर्थ हूँ कि जो कुछ इन लोगों ने लिखा है वह सभी सत्य है। परन्तु दो-एक ऐसी पुस्तकों के पढ़ने के पश्चात् तो ऐसा लगता है कि इन लोगों का पण्डित जी से अधिक सम्बन्ध नहीं था। यह सत्य है कि पण्डित जी जब तक जीवित रहे, उनकी प्रशंसा समस्त देश में फैली हुई थी, अनेक लोग उनकी वीरता की सराहना करते थे। कई तो उनसे मिलने के भी उत्सुक थे। परन्तु मिलना भी नहीं चाहते थे क्योंकि उनको अपने पकड़े जाने का भय था। यही नहीं यदि ऐसे व्यक्तियों से दल के लिए कुछ रुपया मांगा जाता था तो वह बहाने कर दिया करते थे, परन्तु चन्दा नहीं देते थे।

एक और बात स्पष्ट करने योग्य है। यह सम्भव है कि दल के कुछ सदस्य पण्डित जी के सम्बन्ध में एक ही बात को भिन्न रूप से देश के सामने प्रस्तुत करें। यह कहना कठिन होगा कि कौन-सा या किसका वर्णन सही है। हो सकता है पण्डित जी ने स्वयं ही भिन्न-भिन्न सदस्यों को भिन्न-भिन्न रूप में बताया हो। यह तो दल का नियम था ही कि कोई भी सदस्य किसी दूसरे सदस्य से न उसका असली नाम पूछता था और न ही उसके सम्बन्ध में कुछ जानकारी कर सकता था। जो भी सदस्य बता देता था वैसा ही ठीक मानना पड़ता था।

इस बात का मुझे तब आभास हुआ जब पण्डित जी के सम्बन्ध में १९६४ में ग्वालियर से एक विरोध अंक निकला। उस अंक में पण्डित जी के सम्बन्ध में कई ऐसे लेख हैं जो भिन्न-भिन्न रूप से लिखे गये हैं और सभी

लेखको ने यह लिखा है कि पण्डित जी ने उनको ऐसा बताया था, अथवा उन (लेखको) की जानकारी में ऐसा हुआ था। फिर भी कई बातें तो उन लेखों में मेरी अपनी जानकारी में, सत्य नहीं हैं। यही कहा जा सकता है कि शायद पण्डित जी ने उनको उसी प्रकार बताया हो जैसा उन्होंने लिखा है।

इसीलिए मैं पाठको को भूमिका में ही बता देना चाहता हूँ कि जो कुछ भी मैं इस पुस्तक में पण्डित जी के सम्बन्ध में लिख रहा हूँ, उसकी सत्यता अथवा असत्यता की गारण्टी न लेकर यही कह रहा हूँ कि मैं केवल वही लिख रहा हूँ जो पण्डित जी ने स्वयं मुझे बताया था या जो कुछ मेरे उनके समीप आने के पश्चात् घटित हुआ था।

पण्डित जी की बाल्यावस्था

पण्डित जी का रोमांचक जीवन उनकी १३ वर्ष की आयु में आरम्भ हुआ। उनका जन्म भावरा, तहसील अलीराजपुर रियासत में २३-७-१९०६ को (उनकी माता के वयनानुसार) हुआ था। उनके पिता सीताराम जी ने अपना अधिकतर जीवन अलीराजपुर रियासत में अपनी पत्नी जगरानी देवी के साथ बिताया था जहाँ वह नौकरी से रिटायर होकर राज्य के उद्यानों के सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हो गए थे केवल आठ रुपये मासिक वेतन पर। पण्डित जी को उन्होंने भावरा की तहसील के प्राथमिक विद्यालय में भरती करा दिया था। इस विद्यालय में अधिकतर उस राज्य के आदिवासी भीलों के लड़के पढ़ते थे। पण्डित जी बहुत ही थोड़े दिन उस विद्यालय में पढ़ पाए थे। परन्तु जब उनकी माता जगरानी देवी जी मुम्बई दिल्ली में १९४५-४६ में मिली थी तो उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की थी कि वह अति आभारी होगी यदि लोग पण्डित जी के नाम से भावरा में एक हाई स्कूल अथवा माध्यमिक विद्यालय खुलवा दें। पण्डित जी के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी कुछ लोगों का विचार है कि उनका जन्म भावरा में नहीं हुआ था, उन्नाव जिले के बदरिका गांव में हुआ था। ये लोग हर वर्ष बदरिका में पण्डित जी के नाम से एक मेला भी लगाते हैं। जहाँ तक मेले का प्रश्न है अथवा पण्डित जी के वलिदान की गाथाओं का प्रचार है, उसमें किसी को भी विरोध नहीं हो सकता। परन्तु अधिकतर पण्डित जी के सभी साथियों के विचार में उनका जन्म भावरा में ही हुआ था। ऐसा ही पण्डित जी ने मुझे स्वयं भी बताया था।

हा, पण्डित जी के पिता सीताराम तिवारी जी अवश्य उन्नाव जिले के रहने वाले थे। उनके तीनों विवाह भी इसी जिले में हुए थे। पण्डित जी की माता जगरानी देवी तिवारी जी की तीसरी पत्नी थी।

पण्डित जी के पिता सीताराम जी बड़े शोधी थे। वह अपने लड़के को अपनी कड़ी निगरानी में रखा करते थे और उनके पढ़ने-लिखने पर अधिक जोर देते थे। पण्डित जी को उनमें स्नेह कम था, डर अधिक। इस पिता के स्नेह के अभाव को उनकी माता पूरी करती थीं जिनको अपने पुत्र से अगाढ़ प्रेम था।

एक दिन पण्डित जी, जब उनकी आयु १३ वर्ष की थी, उस राज्य के एक बाग में थे, जिसके उनके पिता सुपरिन्टेन्डेंट थे, चार बड़े-बड़े आम के फल तोड़ कर घर ले आए। माली ने सुपरिन्टेन्डेंट साहब के पुत्र होने के नाते उनको रोका नहीं। जब उनके पिता ने घर पर चार आम रखे देखे तो उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा कि आम कहाँ से आए। पत्नी ने उत्तर में पण्डित जी का नाम बता दिया। सीताराम जी को क्रोध आया और उन्होंने पण्डित जी को चोरी करने पर लाइना की और बहुत डाटा। माता ने पुत्र का पक्ष लिया। इससे पिता का क्रोध और भड़क उठा और उन्होंने पण्डित जी को माली को आम लौटा देने के लिए कहा। माता को अपना पक्ष लेते देख पुत्र ने आम लौटा देने से इन्कार किया और साथ ही कह दिया कि वह माली से क्षमा याचना भी नहीं करेंगे। सीताराम जी के क्रोध की सीमा नहीं रही। उन्होंने पण्डित जी को घर से बाहर निकाल दिया और कहा कि जब तक वह माली से क्षमा नहीं मांगेंगे वह उनको घर में नहीं घुसने देंगे। घर का अन्दर से कुण्डा बन्द कर अपनी पत्नी से कह दिया कि यदि उन्होंने द्वार खोला या अपने पुत्र का पक्ष लिया तो वह उनको भी घर से बाहर निकाल देंगे। यह सब लगभग नौ बजे रात को हुआ था।

पण्डित जी भी सीताराम के पुत्र थे। उनका भी क्रोध भड़क उठा। उन्होंने भी बाल हठ ठान ली कि वह माली से क्षमा मांगेंगे ही नहीं। वह घर के अन्दर उस समय तक नहीं जाएंगे जब तक उनके पिता स्वयं ही बाहर आकर उनको घर में नहीं ले जाएंगे। वह १३ वर्षीय बालक की बाल हठ उनकी प्रतिज्ञा में बदल गई जो उन्होंने लगभग आजीवन निभाई केवल एक बार छोड़कर वह १९२८ में अपने बित्तने ही साधियों के अनुरोध पर सदाशिव राव मलकापुरकर को माय ले भावरा गये थे और अपने माता-पिता के पास केवल २४ घण्टे ही ठहरे थे। उसके पदचात उनके मन में कभी भी यह विचार



ਆਗਾਹ ਦੀ ਮਾਤਾ ਜੀ

नहीं आया कि वह अपने माता-पिता के दूसरी बार दर्शन कर लें। विचार आने का समय ही कहाँ था। उस समय उनकी तो एक ही लगन थी। किस प्रकार दल का सुचारु रूप से संगठन करें। किस प्रकार अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई लड़ें और किस प्रकार देश को स्वाधीन करायें। अब उनके जीवन में माता-पिता का कोई स्थान नहीं था। उनका कुटुम्ब था उनके दल के साथी। यहाँ तक जब उनकी एक बार कानपुर में एक सज्जन ने कुछ रुपये अपने माता-पिता को भेजने के लिये दिये तो उन्होंने उन रूपयों को दल के काम में लगा लिया यह कह कर कि माता-पिता से अधिक आवश्यकता उस रुपये की दल को है।

पण्डित जी घर के बाहर अघेरी रात में अकेले लगभग १२ बजे तक अपने पिता से बुलाये जाने की प्रतीक्षा देखते रहे। जब पिता नहीं आये तो वह पाम ही के एक गांव में अपने चचेरे भाई मनोहरलाल तिवारी के घर चले गए और वही २४ घण्टे अपने पिता के आने और उनकी गले लगाकर घर लौटा ले जाने का स्वप्न देखते रहे। परन्तु यह विवाद तो पिता और पुत्र के बीच था। पिता पुत्र से भला कैसे हार मान सकते थे। वह नहीं आए। पण्डित जी के चचेरे भाई जिसके पास वह उस समय ठहरे हुए थे तथा भावज ने उनसे कहा कि वे दोनों उनके पिता के पास लौटा देंगे। परन्तु पण्डित जी ने घर लौटने से इन्कार कर दिया। भाई ने कहा कि पण्डित जी उम्मी के पास रहकर विद्या अध्ययन कर सकते हैं। परन्तु उसी रात पण्डित जी ने भाई-भावज के बीच वाद-विवाद सुन लिया जिसमें भावज ने अपने पति से कहा था कि वह चन्द्रशेखर का दूसरे दिन प्रातः उनके पिता के पाम ही छोड़ आयें। पण्डित जी ने उम्मी समय निश्चय कर लिया कि वह उम घर में भी नहीं ठहरेंगे। यह था निश्चय तथा मकल्प एक १३ वर्षीय बालक का जिम्मे उनके जीवन की धारा को पूर्णतया बदल दिया और भागत को उनके बलिदान पर गौरव करने का और दाम होते हुए भी अपना गिर ऊँचा करने का अवसर दिया।

पण्डित जी के बचपन के सम्बन्ध में मैंने यही लिखा है जो पण्डित जी ने स्वयं मुझे बताया था। परन्तु उनके चचेरे भाई मनोहरलाल तिवारी ने इन बातों का किसी अन्य ही रूप में वर्णन किया है। उनके मेतानुसार आजाद का एक मोती का व्यापारी अपने गांव बचपन से गया था और कनिष्ठ ब्रह्मचारी ने भी लिखा है कि विचार मनोहरलाल जी ने गाँव पर अपनी पुष्ता में व्यक्त किया है।

यह दृष्टा दास का नहीं कर सकता कि जो मैंने लिखा है, यही मरय

है । परन्तु अधिक सत्य तो मेरे ही कथन में दीखता है । कारण यह है

(१) पण्डित जी का एक अनभिज्ञ व्यक्ति के साथ भावरा छोड़ना ।

(२) उनका अपने माता-पिता अथवा भाई भावज से आज्ञा न लेना, इतना ही नहीं उनको बताना भी नहीं ।

(३) मोती वाले का पण्डित जी को बम्बई की गलियों में ले जाकर छोड़ देना । वह उनको अपने ही घर ठहरा सकता था अथवा उनका कुछ अन्य प्रबन्ध कर उनकी नौकरी या काम-वाज की व्यवस्था तो कर सकता था । पर पण्डित जी के कथनानुसार ही उन्होंने होटल में नौकरी की थी ।

बम्बई की यात्रा

पण्डित जी ने अपने भाई का घर प्रातः ४ बजे छोड़ा जब दोनों सो रहे थे। उन्होंने दोहद की ओर कदम उठाया। वह उसी एक ओर जाने वाली सड़क पर चलते ही रहे। जय थक जाते, थोड़ा विश्राम कर लेते और फिर चलने लगते। डर था कि कहीं भाई आकर पकड़ कर लौटा न ले जाए। खाने की दुकानें रास्ते में पड़ी। परन्तु पैसा पास न था। अतः चलते ही रहे, भूखे तथा थके-मादे। परन्तु कदम न रुका। २४ घण्टे के अन्दर लगभग चालीस मील की यात्रा कर दोहद स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ एक रेल गाड़ी खड़ी थी। उसी गाड़ी के एक डिब्बे में जाकर लेट गए। थक कर चूर हो गए थे। लेटते ही सो गए। जब आँख खुली तो देखा एक बड़ा-सा स्टेशन है। गाड़ी सब खाली हो गई है। बाहर निकल कर पूछने पर ज्ञात हुआ बम्बई है। शहर की ओर चल दिए। जब गोदी (मालगोदाम) के समीप पहुँचे तो वहाँ खाने के होटल देखे। एक में निखा था। “राइस प्लेट चालू आहे”। पूछा यह क्या होता है, मालूम हुआ, चावल भात तैयार है। भूख से विचलित हो गए। दुकानदार से दाम पूछने पर पता चला एक प्लेट दो आने में मिलती है। परन्तु दो आने कहा थे। उन्होंने दुकानदार से नौकरी देने की प्रार्थना की। दुकानदार ने परिहास से कहा “जा अभी दूध के दात तो टूटे नहीं हैं नौकरी करने आया है।” परन्तु पण्डित जी हताश नहीं हुए। बोले भाई कोई छोटा-मोटा काम देकर देख लो, यदि न हो सके तो पैसे न देना। दुकानदार को उनकी अल्प वयस पर कुछ दया आ गई। उसने उनसे वर्तन माफ करने के लिए कहा जो उन्होंने कर दिए। दुकानदार ने

भी उनको राइस प्लेट दे दी। और यह मालूम होने पर कि पण्डित जी का वह पहला ही दिन बम्बई में आए हुए था और उनके रहने या सोने का कोई ठिकाना नहीं था उनको दुकान बन्द करने पर अपनी दुकान के सामने सोने की आज्ञा भी दे दी।

पण्डित जी ने दूसरे दिन से उस दुकान पर कुछ काम करना आरम्भ कर दिया। दुकानदार इस काम के बदले उनको दो समय राइस प्लेट दे देता था और रात को वह उसी दुकान के सामने सो जाते थे। कुछ समय पश्चात् वह गोदी में काम करने वाले मजदूरों के साथ काम करने लगे और उन्हीं के साथ उनकी कोठरी में सोने लगे। प्रातः या शाम को समय पा कुछ और काम भी कर लिया करते थे जिससे उनको दो आने और अधिक से अधिक चार आने बच जाते थे। इनसे वह अधिकतर अपनी धुधा की तृप्ति ही करते थे। परन्तु कभी-कभी जब चार आने एकत्रित हो जाते थे तो वह सिनेमा, जो उस समय केवल अंग्रेजी में ही होता था, देख लेते थे। कुछ दिन सिनेमा न देखकर उन्होंने एक नया कुरता तथा एक धोती भी खरीद ली थी।

ऐसा कितने दिन चलता रहा, पण्डित जी ने मुझे नहीं बताया और न ही यह मालूम हो सका कि वह कब और किस प्रकार बम्बई छोड़कर बनारस चले गए। हा इतना अवश्य ज्ञात है कि वह १५ वर्ष की आयु में बनारस पहुँच चुके थे।

पण्डित जी १९२१ के आंदोलन से

पण्डित जी ने बनारस पहुँच कर किसी हिन्दी स्कूल में पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों उन्हें बसरत का शोक हुआ और उन्होंने किसी अखाड़े में बसरत करनी आरम्भ कर दी। आदत यह थी जिसमें मन लगाया उसी में तल्लीन हो गए। थोड़े ही दिनों में उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट हो गया, चेहरा गोल तथा शरीर गठीला हो गया और बल का भी यथाशक्ति संचारण हो गया।

उन दिनों बनारस के एक गुण्डे ने शरीफ आदमियों का रहना-सहना तग कर रखा था। बहू-बेटियाँ उसमें बच कर चलती थीं। सामने आने पर वह उनको छेड़े बिना नहीं रहता था। सभी उससे डरते थे। पुलिस उससे मिल कर चलती थी, इसलिए किसी को भी उसका उसकी नीच कार्यवाहियों से राखने का माटम नहीं होता था।

एक दिन शाम के समय पण्डित जी किसी बाज़ार से जा रहे थे। उसी बाज़ार में वह गुण्डा भी अपने दो साथियों के साथ जा रहा था। सामने से एक युवती आ रही थी। उस गुण्डे ने उस युवती को कुछ अपशब्द कहे। वह उसको लाछना देने लगी। इस गुण्डे ने उसको अधिक छेड़ा और उसका हाथ पकड़ लिया। पण्डित जी ने यह सब देखा। उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने उस गुण्डे से युवती के हाथ छोड़ने को कहा। गुण्डे ने पण्डित जी के कहने की अवहेलना की। पण्डित जी ने उसको डाटा। उसने परिहास करते हुए कहा—“जा-जा, अभी तेरे दूध के दात तो टूटे नहीं हैं, मेरे से मुकाबला करने चला है। एक रैपट (तमाचा) मारूंगा तो बत्तीसो दात भड़ जाएंगे।” पण्डित जी का क्रोध उबल पड़ा। उन्होंने उस गुण्डे को ललकारा। गुण्डा युवती का हाथ छोड़ उन पर दौट पड़ा। पण्डित जी तो पहिले से ही तैयार थे। पैतरा बदल कर उसके खपच्ची भर के शरीर को पृथ्वी पर दे पटका और उसकी छाती पर चढ़ बैठे। बोले कि यदि वह उस युवती को बहन कह कर नहीं पुकारेगा तो वह उसका गला घोट देंगे। जब गुण्डे के साथियों ने हस्तक्षेप करना चाहा तो दूसरे लोगो ने, जो वहां राह चलते तमाशा देखने के लिए एकत्रित हो गए थे, उन्हें रोका। गुण्डे ने भी अपनी जान बचानी ही उचित समझी। उसने अपने साथियों को रोका। युवती को बहन कहकर क्षमा मांगी। पण्डित जी ने उसे छोड़ दिया और वह अपने साथिया सहित वहां से चलता बना।

उस दिन के पश्चात् उस गुण्डे की गुण्डागर्दी तो सुनने में नहीं आई परन्तु पण्डित जी के साहस तथा बल की चर्चा समस्त बनारस में फैल गई। यह समाचार आचार्य नरेन्द्रदेव जी के कानों तक भी पहुंचा और वह पण्डित जी को स्कूल से निकाल अपनी काशी विद्यापीठ में ले गए जहां कि वह अध्यापक और सम्पूर्णानन्द उसके मुख्य अध्यापक थे।

पण्डित जी ने विद्यापीठ में हिन्दी तथा संस्कृत का अध्ययन मन लगा कर आरम्भ कर दिया। परन्तु अधिक दिन नहीं हुए थे कि महात्मा गांधी द्वारा चलाया हुआ आन्दोलन जोर पकड़ गया। सहस्रो स्त्री और पुरुष महात्मा गांधी की जय के नारे लगाते हुए जेल को प्रस्थान करने लगे। काशी विद्यापीठ के अनेको छात्र भी उस आन्दोलन में शरीक हुए। भला पण्डित जी कब चुप बैठ सकते थे। वह भी हाथ में भण्डा ले महात्मा गांधी की जय बोलते हुए आन्दोलन में बूढ़ गए। पकड़े गए और खारेघाट आई० सी० एस० की अदालत में पेश हुए। खारेघाट ने उनका नाम पूछा। उत्तर दिया ‘आजाद’। पिता का नाम

‘स्वाधीन’ बताया और रहने का पता जेलखाना । आजाद तो वह अन्त क्षण तक रहे और स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिए अपनी बलि भी दे दी । परन्तु जेलखाने को कभी घर नहीं बनाया ।

सायेंघाट मजिस्ट्रेट ने उनको १५ बेंतों की गजा दी । उनको जेल ले जाया गया और खुले मैदान में १५ बेंत लगाये गये । पहिले १० बेंतों तक तो वह बन्देमातरम् बहते रहे परन्तु ११वा बेंत पड़ते ही उनके मुख से महात्मा गांधी की जय का नारा निबला । इतनी कम वयस के युवक प्राय १५ बेंत खाकर बेहोश हो जाते हैं या पीडा से चीख पड़ते हैं । परन्तु बाह रे धीर ! बमर से लहू बह रहा था । राल उधड़ चुकी थी । चरबी निबल आई थी परन्तु न तो चीख थी और न ही आँखों में आँसू । मुख से केवल महात्मा गांधी की जय के नारे ही निबलते थे । सरदार गण्डासिंह, जो उस समय बनारस जेल का जेलर था, पण्डित जी के साहस से बहुत प्रभावित हुआ और कोड़े लग जाने के बाद उनको अपने घर ले गया और उनको गर्म-गर्म दूध का एक गिलास पिलाया (यह बात सरदार गण्डासिंह ने स्वयं मुझे १९३४ में बनारस सेन्ट्रल जेल में कही थी जब वह वहा सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल था और मैं दिल्ली पड़्यन्त्र बेस के सम्बन्ध में अपनी सजा काट रहा था ।) विद्यापीठ में लौटने पर सम्पूर्ण-नन्द जी ने उनको आजाद के नाम से ही सम्बोधित किया और तभी से उनका नाम चन्द्रशेखर आजाद विख्यात हो गया ।

विचार परिवर्तन

पण्डित जी जब बेंत खाकर लीटे तो उनके साहस की चर्चा सारे नगर में फैल चुकी थी । लोग जेल के द्वार पर उनके स्वागत के लिए हज़ारों में प्रस्तुत थे । वे पण्डित जी को कन्धो-कन्धो शहर में ले गए और सारे शहर में उनका जुलूस निकाला । एक ग्राम सभा में उनका चित्र भी लिया गया । चन्द्रशेखर ‘आजाद’ की जय के नारे लगाए । पण्डित जी इस भव्य स्वागत से प्रसन्न तो हुए परन्तु प्रभावित नहीं । वह काशी विद्यापीठ में लौट विचारों में डूब गए । वह था विचारों का सर्घर्ष । वह सोचने लगे क्या कुछ दिनों के लिए जेल जाकर, या कोड़े खाकर, या महात्मा गांधी की जय बोल कर, भारतवर्ष स्वाधीन कराया जा सकता है । उनके सम्मुख एक ओर था समस्त भारतवर्ष का उबलता हुआ जोश जो केवल जेल जाकर ही ठण्डा पड़ जाता था और दूसरी ओर अंग्रेज़ हाकिमों की क्रूरता और उनकी पिटतू पुलिस की अन्धेर गर्दी । वह कितने ही दिनों इन विचारों के तर्क-वितर्क में लिप्त रहे । अन्य विद्यार्थियों से वहस की

और आचार्य नरेन्द्रदेव जी से भी परामर्श किया। परन्तु वह किसी भी प्रकार इस विचार को अपना न सके कि केवल जेलयाना से भारत स्वाधीन कराया जा सकता है।

उस समय पण्डित जी की आयु लगभग १५ वर्ष की थी। शायद वह वयस ऐसे तर्क-वितर्क करने के योग्य न हो। परन्तु पण्डित जी का १३ वर्ष की आयु में घर का छोड़ देना और फिर उस ओर मुह न मोड़ अपने पाव पर खड़ा होना यह प्रतीत करता है कि वह उतनी छोटी आयु में भी गम्भीर हो गए थे। और देश की स्वाधीनता की लड़ाई के सम्बन्ध में कौन-सा मार्ग उचित होगा अथवा नहीं होगा, इस गूढ़ समस्या पर भी सोचने में समर्थ थे। वह अन्त में इस निर्णय पर पहुँचे कि देश की स्वाधीनता अहिंसा के मार्ग द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती। उसको हासिल करने के लिए तो हिंसा का मार्ग अपनाना ही होगा। अंग्रेज अहिंसा से भारत को कभी नहीं छोड़ेंगे परन्तु उनको डराकर, मारकर अथवा इसी प्रकार के अन्य साधनों से भारत से भगाया जा सकता है। आयर-लैंड का ताजा ही उदाहरण उनके सन्मुख था। उनके सामने उस समय दोनों रास्ते खुले थे। एक था कांग्रेस का जिसमें उनको अधिक से अधिक साल छे महीने की जेल काट लीडर बनकर बाहर निकलना, अपनी जय-जयकार सुनना, फूनों की मालामाली से स्वागत कराना और बिना हींग या फिटकरी लगाये लीडर बन जाना। दूसरा मार्ग था, अपने सब सुखों, शान्ति तथा कुटुम्ब का त्याग, लड़ते-लड़ते मर जाना या पकड़े जाने पर आजीवन सी क्लास के कारावास में जीवन बिताना। एक मार्ग था सुगम और सुलभ और दूसरा था दुर्गम और बठिनाइयों से पूर्ण।

परन्तु पण्डित जी को लीडर बनने की इच्छा नहीं हुई। उन्हें सुख और शान्ति का विचार भी न आया। उनके सामने तो थी देश की स्वाधीनता। वह इसी निर्णय पर पहुँचे कि यह स्वाधीनता दुर्गम मार्ग को अपनाने से ही समीप लाई जा सकती है। इस निर्णय पर पहुँचने ही उन्होंने कांग्रेस से सम्बन्ध छोड़ प्रान्तिकारियों का मार्ग अपनाया।

क्रांतिकारी दल में पदार्पण

तो खुदीराम बोस आदि अनेक गोली चलाते हुए मारे गए थे या फासी के तख्ते पर लटक चुके थे। देहली के प्रथम पड़्यन्त्र वेस के मास्टर अमीरचन्द, अवध-बिहारी आदि को फासिया हो चुकी थी। दूसरी वर्ल्ड वार के बीच भी लाला हरदयाल, वीर सावरकर, मंडम कामा, कृष्ण जी धर्मा, राजा महेन्द्रप्रताप सिंह तथा रासबिहारी बोस आदि अनेको वीरो की अनथक कोशिशें लगातार चल रही थी भारत को आजाद कराने के लिए। १९१८-१९ में ब्रिटिश हिन्द सरकार ने एक रोलेंट कमिटी भी बनाई थी जिसने लगभग ३०० पृष्ठों की पुस्तक में क्रान्तिकारियों के कार्यों की चर्चा का उल्लेख किया था। सरकार-दमन की नीति का व्यवहार कर रही थी। वह यह न जानती थी कि दमन से युवकों की स्वाधीनता की अग्नि बढती ही है, दबती नहीं। एक दल क्रान्तिकारियों का पकड़ा जाता था, दूसरा क्षेत्र में बूढ़ पड़ता था। रिले रेस की भांति उनकी कार्यवाहिया चलती रहती थी। चुनाव १९२२-२३ में भी बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और पंजाब में कई ऐसे युवक, जिनका ध्येय क्रान्ति से स्वाधीनता प्राप्त करना था, एक सूत्र से बंधे हुए थे। उनका प्रयत्न दल के सदस्य बढाना और समय-समय पर कोई न कोई 'एक्शन' करने की ओर लगा रहता था।

बनारस में भी उस दल का सूत्र था मन्मथनाथ गुप्त और प्रणवेश चँटरजी के रूप में। जब मन्मथ ने पण्डित चन्द्रशेखर आजाद की वीरता सुनी तो उन्होंने उनसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया। वे दोनों भी काशी विद्यापीठ के विद्यार्थी थे। उन्ही दिनों बंगाल के क्रान्तिकारी दल ने श्रीयुक्त जोगेशचन्द्र चँटरजी को उत्तर प्रदेश में दल को बढाने और उसका संगठन करने के लिए भेजा था। मन्मथ तथा प्रणवेश द्वारा पण्डित जी का सम्पर्क श्री जोगेश दा से भी हो गया।

उस समय उत्तर प्रदेश में एक क्रान्तिकारी दल काम कर रहा था और काशी तो उस दल का सबसे बड़ा केन्द्र था। काशी में भी काशी विद्यापीठ तो मानो क्रान्तिकारी बनाने के लिये ही चलाया गया था। उस दल के नेता श्री रामप्रसाद बिस्मिल थे। जो अधिकतर शाहजहापुर में रहते थे। परन्तु दल के केन्द्र भिन्न-भिन्न नगरों में मौजूद थे। दल के संगठन का कार्य चल रहा था। पण्डित जी को इस दल के अस्तित्व का मन्मथनाथ गुप्त ने ज्ञान कराया। प्रयत्न कर वह उस दल में भरती भी हो गए। काशी में ही बिस्मिल के मिलने से पहिले उनका परिचय शचीन्द्रनाथ बख्शी, राजेन्द्र लाहिरी तथा गोविन्द-

चरणकर से भी हो गया था। आज़ाद कम वयस के थे, परन्तु उनका जोश देख कर विस्मिल को अधिक सोचने की आवश्यकता ही नहीं हुई। दल में उनको विक्व सिलवर (Quick Silver) से सम्बोधित किया जाने लगा।

त्रान्तिकारी दल के सदस्य अमीर लोगों के लडके नहीं होते थे। वे सभी सामान्य या गरीब घराने के होते थे। अपना सब कुछ दल को अर्पण करके भी धन इतना नहीं हो पाता था कि दल का साधारण काम भी चलाया जा सके। धनवानों अथवा दूसरे लोगों से प्रार्थना करने पर भी उनसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती थी। प्रायः लोग त्रान्तिकारियों की बुराई भी करते थे और प्रशंसा भी, परन्तु जब उनसे सहायता मांगी जाती थी तो वे दुत्कार दिया करते थे। परन्तु त्रान्तिकारियों का कोई भी एक्शन बिना हथियारों के सम्भव नहीं था और हथियार ज़ूक में छपीड़े पैसे देकर खरीदे जाते थे। परन्तु रुपए थे कहा ? त्रान्तिकारी रुपयों के अभाव से दल के काम को स्थगित करने के लिये प्रस्तुत न थे। यदि लोग सीधी तरह से पैसा न दें तो अमीर लोगों से जबरदस्ती छीना जाए। उसका एक ही मार्ग था—डकैती। इस राजनीतिक डकैती से एकत्रित किया गया रुपया चूँकि भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने में लगाना था इस कारण यह डकैती उतनी भीषण अथवा घृणास्पद नहीं लगती थी।

डकैती से पहले रामप्रसाद विस्मिल ने अन्य धन संचय करने के उपाय भी सोचे, परन्तु सफल न हुए। यह बात प्रायः सभी जानते हैं कि साधुओं के मठों में पर्याप्त धन होता है। ऐसे ही एक मठ में उन्होंने पण्डित चन्द्रशेखर को उन साधुओं के गुरु का शिष्य बनाकर भेजा। पण्डित जी ने सिर मुण्डवा लिया और केरए वस्त्र धारण कर लिए और बाट जोहने लगे कि कब गुरु मरेगा और कब उसकी गद्दी सभाल कर उस मठ में सचित धन का सदुपयोग करेंगे। परन्तु गुरु था जो शीघ्र मरने वाला ही नहीं था। पण्डित जी ने विस्मिल को निगा कि गुरु तो सण्ड-भुसण्ड दिन दुगना, रात चौगना बढता ही जा रहा है, उससे मरने तक तो वह स्वयं भी वृद्ध अवस्था में जा पढ़ेंगे। विस्मिल ने उनको यहाँ से बुला लिया।

काकोरी डकैती

सभी क्रान्तिकारी, नेता हो अथवा साधारण सदस्य, डकैती से घृणा करते थे। विशेषकर अपने ही भाई बन्धुओं को लूटना तो उनको अप्रिय था। इसलिए श्री रामप्रसाद बिस्मिल ने किमी अमीर व्यक्ति को न लूट सारकारी घन लूटने की योजना बनाई। यह योजना बनाते समय यह बात निश्चित कर ली गई थी कि इस योजना में दल का राजनैतिक रूप स्पष्ट रहे जिससे जनता जान जाये कि यह डकैती साधारण न होकर देश की स्वाधीनता के युद्ध की एक कड़ी है। उनको विश्वस्त सूत्री से पता चला कि एक ट्रेन में लगभग ३०,०००) रु दूसरे स्टेशनों पर बाटने के लिए लखनऊ से ले जाया जाता है। पहिले तो उन्होंने लखनऊ में ही उस ट्रेन के कोप को लूटने की स्कीम बनाई, परन्तु डर था कि कहीं मार-काट न करनी पड़ जाए। बिस्मिल ने सभी सदस्यों को भिन्न-भिन्न कामों में लगा दिया। पण्डित जी का काम था गाड़ी के साथ खड़े होकर लोगों को बाहर न निकलने के लिये सावधान करना और रुपया मिलने के पश्चात् उसको दो थैलों में भरकर माइकल पर थैले लटकाकर जंगल-जंगल लखनऊ पहुँच जाना। स्मरण रहे, उन दिनों नोटों का अधिक व्यवहार नहीं था। चांदी के रुपये ही प्रचलित थे।

६ अगस्त १९२५ को जब गाड़ी काकोरी से लगभग दो मील गई थी कि जंजीर खींची गई। गाड़ी रुक गई। रुकते ही कुछ लोग तो गाड़ी से बाहर निकल आए और अन्य सदस्य वहाँ पहले से ही प्रस्तुत थे। गाड़ी के दोनों ओर हर दो मिनट के बाद फायर हवा में होने लगे। लोगों में वह दिया गया कि

गाड़ी को रोकने वाले डाकू नहीं है वे तो क्रांतिकारी है। लोगो से वे कुछ नहीं बोलेंगे। परन्तु लोग भी अपने-अपने डिव्वो से बाहर न निकलें।

इस एवधान के समय केवल तीन सदस्य ऐसे थे जो शरीर में हृष्ट-पुष्ट तथा चलवान थे। वे थे श्री विस्मिल, श्री अशफाक उल्लाह और पण्डित जी। श्री विस्मिल तो नेतृत्व कर रहे थे। अशफाक उल्लाह को गाड़ के डिव्वे में उस सन्दूक को तोड़ने का कार्य सौपा गया जिसमें रुपया था। अशफाक के प्रयत्न करने पर भी जब वापस नहीं दूटा तो वह विस्मिल के पास दौड़ा। उधर दूसरी ओर से गाड़ी आने का समय हो रहा था। विस्मिल ने पण्डित जी की ओर देखा और पण्डित जी का सकेत पाते ही गाड़ के डिव्वे की ओर लपके। उन्होंने और अशफाक ने मिलकर सन्दूक को तोड़ डाला और पण्डित जी दस हजार रुपये धूलो में भरकर साइकिल पर बैठ जगल-जगल २४ मील की यात्रा कर लखनऊ पहुच गए। इन रुपयो का वजन लगभग तीन मन था। पण्डित जी ने मुझे ऐमा ही बताया था, परन्तु मन्मथनाथ जी से पूछने पर उन्होंने बताया कि पण्डित जी को रुपये के सन्दूक तोड़ने का भार सौपा गया था। परन्तु जब पण्डित जी उस सन्दूक को तोड़ने में असफल हुए तो अशफाक उल्लाह ने उनकी सहायता की और सन्दूक तोड़ा गया।

मन्मथ जी ने यह भी बताया कि रुपया पण्डित जी साइकिल पर नहीं ले गये थे। सभी दल में सम्मिलित सदस्य पैदल चल लखनऊ पहुच गये थे और गोमती की ओर जाने वाले पथ के पास के जगल में छिप गए थे। प्रातः जब गोमती में स्नान करने के लिए स्त्री-पुरुषों ने आना-जाना आरम्भ कर दिया तो यह लोग भी उनमें रल-मिल कर अपने-अपने स्थानों पर पहुच गये।

तो अशफाक के साथ सन्दूक तोड़ने में व्यस्त थे। फिर भी बिस्मिल का सन्देह उन्हीं पर बना रहा। पण्डित जी ने कई बार मुझसे बिस्मिल की प्रशंसा की, परन्तु उनके इस सन्देह को वह दुःखित दिल से कहते थे और कहा करते थे कि उन्होंने कभी भूठ नहीं बोला, फिर भी बिस्मिल को उनपर सन्देह क्यों बना रहा। उनके विचार में किसी अन्य सदस्य ने जिसको शायद पण्डित जी की सफलता से द्वेष हो गया हो, बिस्मिल से भूठ ही उनका नाम ले दिया था। दल के सदस्य कभी डाका डाल कर प्रसन्न नहीं होते थे परन्तु धन का अभाव उनको इस कार्य के लिये मजबूर करता था। डाका डालने के पश्चात् दल के सभी सदस्य दुःखित हृदय को लिये उदास रहते थे। इन सबमें सबसे अधिक उदासीनता पण्डित चन्द्रबेखर की होती थी। डाके के समय यह सबसे अधिक चुस्त नजर आते थे, परन्तु डाके की घटना के पश्चात् वह कई-कई दिन किसी से बोलना नहीं चाहते थे, छोटी-छोटी-सी बातों पर चिढ़ जाया करते थे और कोधित भी हो जाया करते थे।

घर से वेघर

वाकौरी के पास लूटी गई ट्रेन ने सरकार को चौकन्ना कर दिया। यह तो प्रत्यक्ष था कि लूटने वाले साधारण डाकू नहीं थे अपितु वे पढ़े-लिखे क्रान्ति-कारी थे। सरकार को डाकुओं की अधिक परवाह नहीं होती। क्यों? इस कारण कि वे सरकार में उद्दण्डता नहीं करते। वे कानून अवश्य तोड़ते हैं परन्तु सरकार के अस्तित्व में कुछ बाधा नहीं आती। थोड़ा-बहुत प्रयत्न कर सरकार यदि उनको पकड़ने में सफल हो जाए तो ठीक। वरना सैंकड़ों डाकू सैंकड़ों डाके डालते रहते हैं और सरकार की हकूमत भी कायम रहती है।

परन्तु सियासी डाका असाधारण डाका होता है। वह होता है चुनौती सरकार को। सरकार सभी प्रकार के प्रयत्नों से ऐसे डाके का सुराग लगाती है और सच तो यह है कि वह सफल भी हो जाती है। इससे प्रत्यक्ष है कि यदि सरकार चाहे तो कोई कारण नहीं कि वह हर एक डकैती का पता क्यों न चला सके।

अभी रोलेट कमिटी की रिपोर्ट को छपे थोड़े ही वर्ष बीते थे और ब्रिटिश सरकार तथा उसके प्रतिनिधि भारत सरकार का विचार था कि माण्टेगू चेम्सफोर्ड सिफारिशों से भारतीयों को अपने साथ ले लेंगे। हर दास देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं होती जो हाकिम वक्ता का साथ देकर अपना उन्मूलन सीधा करने हैं। भारत में तो ऐसे व्यक्तियों की संख्या अधिक ही थी

और अब भी है। परन्तु महात्मा गांधी के १९१६ के सत्याग्रह ने इतना अवश्य सिद्ध कर दिया था कि जनता ब्रिटिश सरकार की राय से भेद रखती थी। १९१६ का सत्याग्रह १८५७ की स्वाधीनता युद्ध के पश्चात् पहिला अवसर था जब अंग्रेजों द्वारा फूट के बीज सफलतापूर्वक बोने के पश्चात् भी हिन्दू और मुसलमान एक साथ एक प्लेटफार्म पर आगे बढ़े और उन्होंने ब्रिटिश सरकार की सत्ता को चुनौती दी।

ब्रिटिश सरकार, जो दो सौ वर्षों से इस पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों पर अपनी सत्ता जमाए हकूमत कर रही थी, एक बार फिर हिन्दू-मुसलमानों में फूट डलवा कर आपस में लड़ाई और मार-काट कराने में सफल हो गई। १९२४ में यह अवस्था थी कि कांग्रेस को छोड़ हिन्दू और मुसलमान एक प्लेटफार्म पर दीख ही नहीं पड़ते थे। एक दूसरे का गला काटने के लिए फिरते थे। छोटी-छोटी और साधारण बातों के बतगड बन जाते थे और चाकू-छुरिया चल जाती थी। ऐसे समय जब ब्रिटिश सरकार स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी, कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन के प्लेटफार्म पर नहीं, फासी के तख्ते पर लटकने वाले प्लेटफार्म पर हिन्दुओं के साथ मुसलमान भी आए। बनारसीदास तथा शिव-चरणलाल शर्मा और अन्य देशद्रोहियों द्वारा सरकार बाकूरी ट्रेन के खूटने वालों के नामों को प्राप्त कर उनको गिरफ्तारी करने में समर्थ हो गई। उनमें एक बहादुर मुसलमान भी था, अशफाक उल्लाह खान जिसने वीरता के साथ बिस्मिल, रोशनसिंह और राजेन्द्र लाहिरी के साथ इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे लगाते हुए फासी के तख्ते पर लटक वीरगति ही नहीं बल्कि भारतवासियों के हृदयों में एक अमर स्थान पा लिया।

बाकूरी ट्रेन में भाग लेने वाले सभी व्यक्ति पकड़ लिए गए थे। यदि कोई नहीं पकड़े गए थे तो वह थे पण्डित चन्द्रशेखर आज़ाद और कुन्दनलाल। बहूत प्रयत्न करने पर भी सरकार उनको पकड़ने में सफल नहीं हुई और सरकार ने उनके पकड़ने के लिए २,०००) रुपए का इनाम घोषित कर दिया।

पण्डित जी बाकूरी बाण्ड के पश्चात् बनारस लौट गए थे, परन्तु जैसे ही उन्होंने सुना कि बाकूरी डकैती के सम्बन्ध में घर-पकड़ आरम्भ हो गई तो आज़ाद और कुन्दनलाल बनारस छोड़ इलाहाबाद में एक भवान किराये पर लेकर रहने लगे। परन्तु अधिक दिन वे वहां ठहर नहीं गये। कारण था बम्ब के टोपियों का विस्फोट। वहां से आज़ाद भागी चले गए। वहां वह एक पूर्व परिचित बामन्य गज्जन माण्डर ग्दनारायण के वहां ठहरे और उनके अनुज बनकर रहने

लगे । मास्टर हदनारायण से उनका परिचय काकोरी बाड से पूर्व शचीन्द्र बख्शी ने करा दिया था । उनकी पत्नी पण्डित जी की भाभी, पण्डित जी और भोजाई में भगडे भी होने लगे और इन भगडों का मास्टर जी ही फैसला कराते थे । पण्डित जी ने अपने काकोरी कैस या अपने विचारों के परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बताया । केवल इतना ही कहा कि धन के अभाव के कारण वह कामी विद्यापीठ में पढ़ना जारी न रख सके । हदनारायण जी परिस्थित को भली भाँति समझ गए थे और जिनको क्रान्तिवारियों से, प्रगाढ़ प्रेम था, उनको अपने पास रखा और उनको रामानन्द द्वारा मोटर ड्राइवरी भी सिखा दी । पण्डित जी खुल्लमखुल्ला हरिशंकर के नाम से कार चलाते फिरते थे और अनेकों बार जब वहाँ के पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट ने कार या ड्राइवर मागा तो पण्डित जी ही जाते थे और अपने ऊपर २,०००) रुपये का इनाम होते हुए भी बरोक टोक और बिना किसी डर के उसकी गाड़ी चलाते थे । उनका उद्देश्य नौकरी करने का नहीं था । वह तो चाहते थे कि एक तो काकोरी बाण्ड के सम्बन्ध में पुलिस की सरगरमिया कम हो जाए जिससे वह क्रान्तिवारी दल को फिर से जुटाने का प्रबन्ध करें । दूसरा पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट की मोटर ड्राइवरी से अपने ऊपर किसी प्रकार का सन्देह न होने देना । तीसरा उद्देश्य यह भी था कि अवसर आने पर पुलिस के हथियारों पर अधिकार करना ।

इन्हीं दिनों उनकी एक अकस्मात् घटना से बाई कलाई में चोट लगी थी और उनका दाया हाथ कुछ अंशों में टेढ़ा हो गया था । यह उस समय हुआ जब मोटर के कारखाने में काम करते थे । एक दिन किसी एक कार का हैण्डिल काम नहीं कर रहा था । सभी कारीगर उसको घुमाने में असफल रहे । पण्डित जी को मानो उनके शारीरिक बल की यह चुनौती थी । उन्होंने तीव्र गति से हैण्डिल घुमाया । हैण्डिल उसी गति से उल्टा फिर गया और पण्डित जी की कलाई की हड्डी टूट गई ।



आजाद भ्राती में मफ़लर अवस्था में मास्टर खन्नारायण की पत्नी और उनके बच्चों के साथ ।

वन प्रस्थान

पण्डित जी मास्टर रत्नारायण के पास तीन महीने ही रह पाए थे कि उनको उसका घर ही नहीं बल्कि एक प्रकार से भासी भी छोड़नी पड़ी। उन्होंने मुझे जो कारण बताया था, वह ऐसा था। रत्नारायण की स्त्री को पण्डित जी भाभी कहकर पुकारते थे। दोनों में देवर भावज का पवित्र प्रेम था और भगड़े भी होते रहते थे। एक दिन कुछ अधिक कहा-सुनी हो गई। पण्डित जी ने भी सोचा कि वह मास्टर जी के पास अधिक दिन ठहर चुके हैं। वह उसी रात रत्नारायण को बताए बिना ही घर छोड़ कर समीप के जंगलों में चने गए और छा की ओर ढीमरा गाव में। वैशम्पायन ने इसका कारण कुछ और ही बताया है। उनसे कहने के अनुसार रत्नारायण जी ने स्वयं ही उनको भासी छोड़ने का आग्रह किया क्योंकि उन समय भासी में पुलिस की चहल-पहल गर्म हो गई थी। पुलिस के पिछा में भासी प्रान्तिकारियों का अट्टा था।

मुझे इस वक़्त में कुछ भय-भा लगता है। बाकोरी काण्ट के सम्बन्ध में आज्ञा और बुद्धिमान को छोड़ कर सभी प्रान्तिकारी पकड़े जा चुके थे और पुलिस को इसकी जल्दी पर तयाल भी नहीं हो सकता था कि वेकन दो प्लानि दन को फिर से इसकी सीधना में जुटा में लग जायेंगे। पुलिस तो यही समझती होगी कि वे दोनों अपनी जान बचाने के लिये वहाँ न गयी छिपे होंगे।

भीनों के दृष्टा के साथ यह भावना में भी गूँव में पड़ चुके थे। आदि-यागियों का कुछ तो समझने हो थे। मेरे गण्डे परत माधु का बस धारण कर

वह आदिवासियों के बीच में जाकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने भीलों को तीर-कमान चलाना तथा पिस्तौल चलाना सिखाना आरम्भ किया। साथ ही उनको अग्नेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रस्तुत करने का प्रयत्न भी किया। परन्तु एक मास पदचात हार मान भासी की ओर लौटे।

भासी के समीप डीमरपुरा गाव के पास एक सातार नदी बहती है। वह नगर के बाहर है परन्तु नगरवासी स्त्री व पुरुष वही प्रतिदिन स्नान करने जाते थे। पण्डित जी उसी स्थान पर एक मन्दिर में रहने लगे। नाम धारण किया हरिश्चकर विद्यार्थी और रामायण का पाठ करने लगे। साधु वेश में होने के कारण उनको सीधा तो मिल जाता था। परन्तु वह तो इस सोच-विचार में थे कि किस प्रकार शान्तिकारी दल को फिर से सजा किया जाए। उसके लिए साधन कैसे जुटाए जाए। पण्डित जी को हिन्दी का ज्ञान तो काशी विद्यापीठ में भली प्रकार हो गया था। प्रतिदिन प्रातः काल ठेठ हिन्दी में घाट पर व्याख्यान देते और उन व्याख्यानो में दासता को दूर करने का मुख्य ध्येय होता था। व्याख्यान सुनने वाला में दो प्रौढ़ा स्त्रियाँ और उनके साथ एक युवती भी प्रायः प्रत्येक दिन होती थी जो व्याख्यान की वज्राय पण्डित जी के मुख की ओर अधिक ध्यान में देखती रहती थी।

एक दिन प्रातः समय व्याख्यान के समय से कुछ पहले पण्डित जी नदी में पाव डाल विचार-मग्न थे कि किस प्रकार इस बनावटी जीवन का समाप्त कर अपने असली ध्येय में लगा जाए। पण्डित जी ने आखें मूंद रखी थी और उनको आस पास के लोगों का भी ध्यान नहीं था। इसी बीच एक पानी में सँरता हुआ सर्प आया। वह पण्डित जी के समीप आया। पण्डित जी के पाव पर भी चढ़ा और फिर पानी में बहता हुआ चला गया। पण्डित जी को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। परन्तु दूसरे स्त्री-पुरुष जो उस समय स्नान करने के लिए मौजूद थे या स्नान कर चुके थे, इस सीन को देख रहे थे। उन्होंने जब देखा कि एक सर्प पण्डित जी को काटने की वज्राय उनके चरणस्पर्श करके गया है तो उन्होंने समझा कि पण्डित जी अवश्य कोई पहुँचे हुए सिद्ध साधु है। वे पण्डित जी के पाव पर गिर साष्टांग प्रणाम करने लगे। पण्डित जी का ध्यान भंग हुआ। वह आश्चर्य में पड़ा। बातों-बातों में पता चला कि भूल बात क्या थी। हम दिये। बालते भी क्या।

इन प्रशंसकों में वे दानो प्रौढ़ा स्त्रियाँ और युवती भी थी। उन तीनों ने पण्डित जी से कहा कि वह उनके साथ घर चले जहाँ वे उनको एक कमरा

दे देंगी और पण्डित जी उनमें से एक की बेटी युवती को शिक्षा प्रदान करे। पण्डित जी भी उस घाट के जीवन से तग आ गये थे। उन्होंने उन स्त्रियों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उस दिन से वह उनके साथ उनके घर जाकर रहने लगे। वैशम्पायन ने इस प्रसंग को दूसरी ही प्रकार और विस्तार से लिखा है। सम्भव है वही सत्य है। मैंने तो यहाँ वही उद्धृत किया है जो आजाद ने मुझे बताया था।

झांसी से प्रस्थान

उन स्त्रियों का भवान नगर से बाहर परन्तु समीप ही था। रहने का भाग तो नीचे था जिसमें वे तीनों स्त्रियाँ रहती थी और ऊपर एक कमरा था जिसका रास्ता बाहर से था। स्त्रियाँ किसी अच्छे घराने की थी। शायद क्षत्रिय जाति की थी। रहन-सहन में पता चलता था कि रुपये का भी अभाव नहीं था।

पण्डित जी ने दूसरे दिन से उम लड़की को, जिसकी आयु लगभग २०-२१ वर्ष की थी, पढ़ाना आरम्भ कर दिया। पढ़ने का समय १० से १२ तथा शाम सूर्य अस्त होने के बाद तक था। घर में बिजली नहीं थी। पण्डित जी के कमरे में एक लालटेन रख दी गई थी। सुबह-शाम पण्डित जी का भोजन नीचे से बनकर आ जाता था। प्रायः वह लड़की ही लाती थी।

अभी छ-सात दिन ही बीते थे कि उन स्त्रियों ने यह मालूम करने के पश्चात् कि पण्डित जी ब्राह्मण कुल के हैं, उनसे उम लड़की से विवाह करने का प्रस्ताव रखा। पण्डित जी ने उम समय उनके प्रस्ताव को यह कह कर टाल दिया कि वह उम पर विचार करेंगे। उनका अभिप्राय था कि वह किसी प्रकार यहाँ कुछ दिन और ठहरें और इम बीच में अपने बाबूरी के खोये हुए सूत्रों से फिर भेंट कर आने का कार्यक्रम निश्चय कर लें। परन्तु ऐसा नहीं हो पाया।

पण्डित जी ने जब उन स्त्रियों को अपने मकल्प में दृढ़ पाया कि वे उनका विवाह उम युवती के साथ करेंगी तो एक दिन रात्रि के नीचे के बाद वह स्थान छोड़ अपना पिस्तौल माथ से समीप के एक गीब में चले गये। वैशम्पायन ने इसी घटना का एक दूसरे रूप में वर्णन किया है, परन्तु घटना का मार एक ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ आजाद ने मुझे एक अधिष्ठाता युवती बनाई थी वैशम्पायन ने उनको प्रोडा बताया है। वह पर पण्डित जी एक समीप के ठाकुर नम्बरदार के यहाँ उमके भाई बन कर रहने लगे। उमके अन्धों का प्रयोग स्वयं भी करने थे और अन्य दूत के मददगारों में भी बगाने थे। उम नम्बरदार को उनका अगली रज मालूम था। भागी

छोड़ने में पूर्व उनका मध्य भगवानदास माहोर तथा मदाधिव गव मनकापुरकर, वैद्यनाथन, कुन्दनलाल आदि से हो चुका था ।

कानपुर में आगमन

पण्डित जी किस प्रकार भासी से कानपुर पहुँचे, यह ज्ञात नहीं हो सका । शायद कुन्दनलाल उनको कानपुर ले गये थे जहाँ उनका परिचय दल के अन्य सदस्यों में कराया गया । उन सदस्यों में थे, विजयकुमार सितहा, बटुकेन्दर दत्त, अजय घोष, रामदुलारे निवेदी, सुरेन्द्र पाण्डे, ब्रह्मदत्त, शिव वर्मा, जयदेव कपूर, डा. गयाप्रसाद, सद्गुरुदयाल अवस्थी, वीरभद्र तिवारी और गणेशशंकर विद्यार्थी में भी कराया गया । यही वह भगतसिंह और सुखदेव से भी मिले । परन्तु उनका कार्यक्षेत्र अब यही नगर हो गया था । वैसे वह भागी भी आते जाते रहे । काकोरी के बिछड़े हुए सूत्र फिर मिल गए थे । उन्हीं को पक्का किया और दल के क्षेत्र को बढ़ाते गए । एक ओर नए सदस्य बनाना जारी था, कानपुर में ही नहीं, ग्वालियर, भासी, सहारनपुर, देहरादून दिल्ली, इलाहाबाद आदि सभी बड़े-बड़े नगरों में नए-नए सदस्य भरती किए जा रहे थे, उनको दूसरे देशों के प्रान्तिवारी दलों के इतिहास की पुस्तकें पढ़ाई जाती थी । अधिकतर पुस्तकें आयरलैंड पर ही थी । दूसरी ओर चन्दा एकत्रित कर रिवातवर और पिस्तौल भी खरीदे जाते थे और उनमें सदस्यों को उनके चलाने की चादमारी का भी अभ्यास कराया जाता था । सदस्य तीन प्रकार के भरती किये जाते थे । पहले वर्ग में वे होते थे जो अपना पूरा समय दल के कामों में लगाने के लिए प्रस्तुत होने थे । दूसरे वर्ग में वे थे जो पूरा समय तो नहीं दे सकते थे, परन्तु हथेली पर जान रखकर काम करने के लिए अभिभवने वाले नहीं थे । उनमें निवास स्थानों को प्रायः दल के सदस्यों के ठहराने के लिए काम में लाया जाता था । तीसरे वर्ग के वे लोग थे जो मरने-मारने या जेल जाने के लिए प्रस्तुत तो नहीं थे परन्तु महानुभूति अवश्य रखते थे । वे लोग केवल थोड़े बहुत धन में ही सहायता करते थे । इस प्रकार की सहायता का लगभग सदा ही अभाव रहा ।

इन का काम विस्तृत होता ही गया । अजमेर, जयपुर, मेरठ आदि में केन्द्र गुप्त गए । पूना में श्री राजगुरु में भी सम्बन्ध स्थापित हो गया । इन सब कामों में पण्डित जी को कानपुर के श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, बरेली के गेठ दामोदरस्वरूप, जयपुर के बंश दानिगारायण, अजमेर के जर्जुननाथ गेठी, इलाहाबाद के रामगिरामन गहगन, कानपुर के रामचन्द्र मुगही, बंगाल बाबू

आदि से पर्याप्त माना मे सहानुभूति तथा सहयोग मिला । कानपुर मे उनका परिचय विजयकुमार सिनहा, शिव वर्मा आदि से भी हो गया था ।

इन्ही दिनों लाहौर मे नौजवान भारत सभा भी जोर पकड़ रही थी । उसमे भगवतीचरण बोहरा, धनवन्तरी, भगतसिंह, सुखदेव, यशपाल, दुर्गादास खन्ना, रणवीर आदि खुले तौर पर व्याख्यानों द्वारा लोगों को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भड़काते थे । एक नेशनल कालिज भी खुल गया था । जयचन्द्र विद्यालकार का पूरा सहयोग इन जोशीले नवयुवकों के साथ था । इन नव-युवकों को पण्डित जी के क्रान्ति दल के दोबारा संगठित करने का समाचार मिल गया । भगतसिंह कानपुर आकर उनसे सम्बन्ध स्थापित कर गए और पंजाब मे भी दल का केन्द्र इन नवयुवकों की सहायता से खुल गया ।

इस प्रकार १९२८ मे पण्डित जी के अनथक परिश्रम से और भगवती-चरण बोहरा, भगतसिंह, सुखदेव, धनवन्तरी, यशपाल (पंजाब), शिवदेव वर्मा, जयदेव कपूर, विजयकुमार सिनहा, सुरेन्द्र पाण्डे (यू पी), राजगुरु (पूना), मनीन्द्रनाथ, फणीन्द्रनाथ घोष, जोगेन्द्र शुक्ल और मनमोहन वैनर्जी (बिहार), जतीनदास (बंगाल), कुन्दनलाल (राजस्थान), डी बी तिलग (मध्य प्रदेश), काशीराम (दिल्ली) आदि की सहायता से दल का फिर से लगभग सारे ही उत्तर भारत मे संगठन सुचारु रूप से हो गया था । इसका श्रेय केवल पण्डित चन्द्रशेखर आज़ाद को ही था । अब तक इस दल का नाम था 'हिन्दुस्थान रिपब्लिकन आर्मी' । परन्तु समय बदल रहा था और संगठन भी आर्मी से बड़ी आगे बढ़ गया था । १९२८ के सितम्बर मे दल की एक बैठक देहली मे बुलाई गई । वह बैठक कुदसिया घाट मे हुई । उस बैठक मे सस्था का नाम बदल कर 'हिन्दुस्थान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन तथा आर्मी' रखा गया और पण्डित जी को कमाण्डर-इन-चीफ नियुक्त किया गया । इस देहली की बैठक मे भाग लिया था, भगतसिंह, सुखदेव, विजयकुमार सिनहा, शिव वर्मा, सुरेन्द्र पाण्डे, ब्रह्मदत्त मिश्र, कुन्दनलाल, जयदेव कपूर, फणीन्द्र घोष, मनमोहन वैनरजी आदि ने । दल के नाम से समाजवाद का शब्द जोड़ने के लिए भगतसिंह ने आप्रह्व किया था । इसी बैठक मे दल ने एक केन्द्रीय समिति भी बनाई थी । जिसमे पंजाब से भगतसिंह तथा सुखदेव, उत्तर प्रदेश से विजय कुमार सिनहा, तथा कुन्दनलाल, बिहार मे फणीन्द्रनाथ घोष और राजस्थान से कुन्दनलाल को नियुक्त किया गया था । आज़ाद तो कमाण्डर-इन-चीफ के नाते सर्व विद्यमान थे ही ।

इस प्रकार दल के केन्द्र भी जगह-जगह पर खुल गए और सदस्य भी

बन गए। परन्तु उनके काम के लिए हथियार नहीं थे और हथियार बिना रुपए के खरीदे नहीं जा सकते थे। दल के लगभग सभी सदस्य पूरे समय दल के काम में सलग्न थे। आर्थिक महायत्ना देने वाले बहुत ही अल्प संख्या में थे। दल में रुपए का अभाव था। इस अभाव को कुछ सीमा तक पूरा करने के लिए, या कहिए कि द. के काम को यथा-शक्ति चालू रखने के लिए पण्डित जी ने निश्चय किया कि दल के एक सदस्य का उपयोग किया जाए। यह सदस्य था कैलाशपति जो उस समय आजमगढ़ के पोस्ट ऑफिस में मनीआर्डर आदि का काम देखता था, उससे कहा गया कि वह किसी एक दिन मनीआर्डर का सारा रुपया ले फरार हो जाए और रुपया पण्डित जी को बानपुर लाकर दे दे। कैलाशपति एक दिन बी. पी. और मनीआर्डर से प्राप्त ३,२००) रुपए लेकर चलता बना। इस रकम में से उसने ५००) रुपए तो अपने माता-पिता को भिजवा दिए जो गरीब थे और शेष रुपया पण्डित जी को समर्पित कर दिया। इस २,७००) रुपए से कुछ तो रिवाल्वर, पिस्तौल और कारतूस खरीदे गए और शेष दल के सदस्यों के रहने के प्रबन्ध में व्यय हो गया।

रुपया थोड़ा था, कुछ काम नहीं बना। पण्डित जी ने बानपुर में फिर भी कुली बाजार में रघुबरदयाल के मकान में एक बम फैक्ट्री खाल दी जिसमें शिवचरण को बम के बनाने के लिए नियुक्त किया। बम के खोल बनाने लगे। उनका मसाला तथा पित्रिक एसिड का बनाना जतीन्द्रनाथ दास ने सिखा दिया।

साइमन कमीशन का आगमन

भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध प्रजा का जोश बढ़ता जा रहा था। कांग्रेस, मुसलिम लीग, जमीयतउल उलेमा हिन्द, अहरार, लाल कमीछ आदि सभी संगठन अंग्रेजों के विरोध में प्रचार कर रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने देखने में तो आसू पोछने के लिए परन्तु यथार्थ में हिन्दू मुसलमानों में फूट बढ़ाने के लिए एक कमीशन भारत में भेजा जिसके अध्यक्ष लार्ड साइमन थे। उस कमीशन के सदस्यों में एक भी भारतीय नहीं था और न ही उसके उद्देश्यों से कोई भी भारत की सियासी पार्टी सहमत थी। सभी पार्टियाँ उस कमीशन का विरोध कर रही थीं। पण्डित जी ने सोचा कि यदि भारत के क्रान्तिकारी लार्ड साइमन को किसी प्रकार मारने में सफल हो जाए तो भारत की सभी सियासी पार्टियों की सहानुभूति क्रान्तिकारी पार्टी को प्राप्त हो जाएगी। भगत सिंह ने इसकी चर्चा देहली के केन्द्र कमिटी में पहले ही कर दी थी और सभी सदस्य उससे सहमत थे।

पण्डित जी ने यथोचित प्रबन्ध लाई साइमन के मारने के लिए किए, परन्तु अभी लाई साहब की आयु पूरी नहीं हुई थी। सभी प्रबन्ध असफल रहे। कानपुर की फैक्ट्री में तैयार किए गए बम लेकर तीन व्यक्ति मनमोहन गुप्त, मारकण्डेय तथा एक अन्य दक्षिण की ओर भेजे गए। लाई साइमन की गाड़ी उम ओर से जाने वाली थी। योजनानुसार वे दोनों उस रेलवे लाइन को साइमन की गाड़ी के गुजरने से कुछ ही क्षण पहले बम से उड़ा देने वाले थे। परन्तु दुर्भाग्यवश दोनों बम गाड़ी के डब्बे में ही फूट गए और वह डब्बा दो क्रान्तिकारियों सहित नष्ट हो गया। मनमोहन घायल हो गए परन्तु बच गए।

भगवानदास और मदाशिव को पण्डित जी ने बम्बई की ओर भेजा, राजगुरु से पूना में मिलने के लिये। परन्तु वे भी भुसावल स्टेशन पर पकड़े लिए गए, परन्तु पकड़े जाने से पहले उन्होंने दिल खोलकर पुलिस का मुकाबला किया। वे दोनों रेलवे यार्ड में इस प्रकार घिर गये थे कि लड़ते हुए मरने या पकड़े जाने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं था।

अभी काकोरी पट्टयन्त्र के सम्बन्ध में अधिक समय नहीं बीता था। केवल दो सदस्यों के अतिरिक्त लगभग सभी सक्रिय सदस्य पकड़े जा चुके थे। आजाद ने भी उनकी गिरफ्तारी के पश्चात् कुछ दिन तो अज्ञातवास में चुप बैठ कर ही बिताये थे। फिर भी उनकी लगन थी कि निकल पड़े और सक्रिय सदस्यों की सहायता बढ़ाने लगी। यह केवल उनकी ही लगन न थी। उस समय के युवकों में यदि उत्तनी ही तीव्र लगन न होती तो सफल कैसे होते। युवकों में जोश या देश को स्वाधीन करने का और उन्नी स्वाधीनता के युद्ध में लड़ते-लड़ते अपने को बलिदान कर देने का। वे आगे आते थे। आजाद उन्हें सदस्य बना, उचित शिक्षा दे उनकी किसी न किसी काम में लगा देते थे। वे भयंकर से भयंकर काम की पूर्वाह न कर आगे बढ़ते थे और मर जाते थे या पकड़े जाते थे।

प्रत्येक गिरफ्तारी आजाद को एक आघात लगती थी। मानो उनके शरीर का कोई भाग उनमें विरक्त हो गया। उन्हें दुःख होता था। कई-कई दिन उदास रहते थे परन्तु फिर बसर बस आगे बढ़ जाते थे। यह उन्हीं के परिश्रम का फल था कि बहुत थोड़े दिनों में ओर कितने ही सदस्यों के मर जाने या पकड़े जाने के बावजूद भी उन्होंने दतिया, गनियाधाना, भोपान, जयपुर, अजमेर, देहली, कानपुर आगरा, ग्वालियर, भागी नलगढ़ आदि में केन्द्र स्थापित कर दिये थे और उनमें से कुछ केन्द्रों में दस्त्र खानों की शिक्षा तथा अग्न्याग का भी प्रदर्शन कर दिया था। यह थी आजाद की ज्यन्त प्रतिभा।

लाला लाजपतराय की मृत्यु

जब साइमन कमीशन लाहौर पहुँचा तो वहाँ की जनता ने एक विराट जुलूस उसके विरोध में निकाला। इस जुलूस का प्रबन्ध भगवतीचरण और भगतसिंह ने नौजवान भारत सभा द्वारा किया था। उस जुलूस का नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे। लाला जी उस समय पंजाब के सबसे बड़े कांग्रेसी राजनैतिक नेता थे। और सभी दल, क्या हिन्दू और क्या मुसलमान या ईसाई उनका सम्मान करते थे। ब्रिटिश सरकार भी उनका यथोचित आदर करती थी। लाला जी कांग्रेस के बड़े नेताओं में से एक थे, परन्तु वह उग्रदल के नेता समझे जाते थे।

यह जुलूस जब स्टेशन के समीप पहुँचा तो स्थानीय पुलिस कर्मचारियों ने उनको वैसा ही एक सबक सिखाना चाहा जैसाकि उनके पूर्वज जनरल डायर ने ११ वर्ष पहले भारतीयों को जलियावालाबाग में दिया था। पुलिस जानती थी कि लाला लाजपतराय उस विराट समूह के नेता थे। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट स्काट ने एसिस्टेंट सुपरिन्टेन्डेन्ट को आज्ञा दी कि वह लाठी चलाकर समूह को तितर बितर कर दे। कहा जाता है कि उसने यह सकेत विशेषकर लाला जी की ओर किया था। साण्डर्स ने समूह पर लाठी चलाते हुए लाला जी के भी तीन लाठिया मारी। लाला जी के शरीर पर इन लाठियों के निशान उनके अन्तिम समय तक थे। नवम्बर १९२८ में यह निशान उन्होंने स्वयं मुझे दिल्ली में डाक्टर अन्सारी की कोठी पर दिखाए थे।

हो सकता है लाठियों में लाला जी को शारीरिक अधिक चोट न लगी हो। परन्तु मानसिक चोट तो अवश्यनीय थी। ठीक है प्रजा की अग्रजों से लड़ाई चल रही थी। रोज कहीं न कहीं गोली चलने या लाठी मारने की वारदातें होती थी परन्तु लोग स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे कि ब्रिटिश सरकार इतनी क्रूर है कि वह एक अखिल भारतीय सम्मानित नेता को भी लाठिया मारेगी। लाला जी तो इस मानसिक तथा शारीरिक आघात का अधिक न सह १७ नवम्बर १९२८ को परलोक सिंघार गए और अपने पीछे लोगों में एक क्रोध की उबाला छोड़ गए। लाला जी की वेइज्जती ने जलती हुई अग्नि पर, जो उनके लाठी लगने में सारे भारत में पैदा हो गई थी, तेल के छिड़कने का काम किया। उनको कांग्रेसी नेताओं में उस समय यह सुनने में आता था कि आन्ति-कारियों को लाला जी पर लाठिया मारने का बदला अवश्य लेना चाहिए। वे स्वयं तो ले नहीं सकते थे क्योंकि अहिंसा में जो विश्वास था और महात्मा

गांधी कभी भी बदले के भाव की आशा नहीं देने। इसलिए छिपे तीर पर कहते-
फिरते थे और विशेषकर पंजाब में तो लगभग हर एक के मुख से बदले की
भावना के विचार निकलते ही थे। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट हो
जायगा।

लाला जी के मृत्यु के पश्चात् लाहौर में एक शोक-सभा हुई। उस सभा
में श्रीमती बसन्तीदेवी, धर्मपत्नी स्वर्गीय चित्तरजनदाम (कलकत्ता) ने कहा
था - "लाला जी की चिता ठही होने के पूर्व देश का कोई युवक सून का बदला
लेगा"। याद रहे चित्तरजनदाम बंगाल तथा भारत के एक उच्च कांग्रेस के नेता
थे और कांग्रेस के प्रधान भी रह चुके थे। इसी प्रचार उनकी धर्मपत्नी भी कुछ
समय के लिए कांग्रेस की प्रधान रही थी।

जब युवक प्रान्तियारी लड़ते-झड़ते मारे जाते थे या फांसी के तह्म पर
लटखते थे तो कांग्रेस के नेताओं के उद्गार उनसे अपने तक ही सीमित रहते
थे। किसी ने टीका नहीं कहा है।

जिसकी म पटो कीर बसार्,

वह क्या जाने पीर परार्।

साण्डर्स वध

पण्डित जी ऐसे मुअवसर को हाथ में निबल जाने देने वाले नहीं थे । उनके लिए तो मानो दिल्ली के भागों छोड़ा हुआ था । वह सीधे लाहौर पहुँचे और भगवतीचरण, मुखदेव तथा भगतसिंह से मिले । उनसे मिलकर स्वाट की हत्या का प्रबन्ध आरम्भ कर दिया । राजगुरु को भी लाहौर बुला लिया ।

उस समय तब पंजाब में कितने ही युवक दल के सदस्य बन चुके थे । मुखदेव पंजाब के संगठनकर्ता नियुक्त किये गये थे । परन्तु भारत के अन्य स्थानों की भाँति यहाँ भी दल की रूपरेखा का अभाव था और एक्शन के लिए आवश्यकता थी रूपरेखा की । प्रत्येक सदस्य को एक आने से लेकर चार आने रोज मिलते थे जिससे उनको दोनों समय का भोजन, दूधादि का खर्चा चलाना पड़ता था । भगतसिंह को चित्रपट का शौक था । वह दो-तीन दिन तक एक समय खाना न खा पैसे बचा कर या तो अण्डे खा लिया करता था या सिनेमा देखा करता था ।

पंडित जी ने लाहौर जाकर धन सचय का और कोई साधन न देख पंजाब नेशनल बैंक की लाहौर की एक शाखा को लूटने की योजना बनाई, यह योजना भगतसिंह ने उनको सुझाई थी । अपने स्वभावानुसार उन्होंने एक्शन के प्रत्येक छोटे से छोटे काम को किसी न किसी को सौंप दिया करते थे परन्तु अब स्वयं उस एक्शन का नेतृत्व करने वाले थे । उस एक्शन में भाग लेने वाले थे, चन्द्र-शेखर, आज़ाद, कैलाशपति, भगतसिंह, कुन्दनलाल, राजगुरु, रणवीरसिंह, मुखदेव, हसराम, जयगोपाल और विश्वरीलाल । एक्शन की पहली संध्या में वह और

भगतसिंह एक अंग्रेजी चित्र टाम कावा का केबिन देखने गये। उस चित्र में भी एक चैक का डाका दिखाया गया था। पण्डित जी ने भगतसिंह का हाथ दबाया और कहा, “जरा ध्यान से देख लो, कल हम सबको भी ऐसा ही करना है।”

एक्शन का समय आया। सभी अपने-अपने स्थान पर खड़े प्रस्तुत थे। केवल टैक्सी का इन्तजार था। बिना टैक्सी के स्पया नहीं ले जाया जा सकता था और टैक्सी आई ही नहीं। एक्शन करना उचित नहीं था इसलिए स्थगित कर दिया गया और फिर एक के बाद एक कुछ ऐसी बातें हुईं कि उस एक्शन का अवसर ही नहीं आया।

टैक्सी न आने का कारण था कि टैक्सी मिली ही नहीं थी। स्मरण रहे उन दिनों घोड़ा गाड़ियों का रिवाज था कारें कम थीं और टैक्सिया तो बहुत ही कम थीं।

धन के अभाव को कुछ सीमा तक भगवतीचरण और दुर्गा भाभी ने दूर किया जिससे स्काट के विरुद्ध एक्शन न रुके। विचार था कि यदि स्काट की हत्या सफलतापूर्वक हो जाय तो लोगों से धन एकत्रित करने में सुविधा होगी और साथ ही दल के कार्य में भी बढावा मिलेगा।

पुलिस का आफिस जहाँ स्काट बैठता था, बहावलपुर रोड की एक कोठी में था। पण्डित जी ने जयगोपाल को स्काट को पहचानने तथा उसके आने-जाने के समय को नोट करने के लिए नियुक्त किया। एक सप्ताह पश्चात् जयगोपाल ने बताया कि वह स्काट को पहचानता है और उसके दफ्तर में आने-जाने के समय भी नोट कर लिए हैं। पण्डित जी ने एक्शन का पूरा व्यौरा तैयार कर सबको उनके काम समझा दिये। जयगोपाल का काम था स्काट को बताकर रफूचककर हो जाना। भगतसिंह को स्काट पर गोली चलाना था। राजगुरु को आवश्यकता पड़ने पर भगतसिंह की मदद करनी थी और पण्डित जी ने स्वयं उन दोनों की रक्षा मभाल ली थी।

दल के पास तीन साइकिलें लाई गईं। जो डी० ए० बी० कालेज होस्टल के अन्दर के अहाते में रखी गईं। एक्शन हो जाने के पश्चात् तीनों श्रान्तिकारी साइकिलों पर बैठ मोड़ग के मकान में चले जाने वाले थे।

१७ सितम्बर १९२८ को चारों साथी निश्चित समय पर जब प्रायः स्काट आफिस से बाहर जाया करता था, वहाँ पहुँच गए। तीनों साइकिलें डी० ए० बी० कालिज के होस्टल के अहाते के अन्दर रख दी गईं। अहाते के चारों ओर एब छै फुटी दीवार थी। उस दीवार के साथ बहावलपुर रोड की ओर

एक तीन फुट गहरी दो फुट चौड़ी नाली खुदी हुई थी। चारों साथियों को थोड़ा ही समय वहाँ पहुँचे हुए हुआ था कि एक अग्रेज आफिस से निकल सीढ़ियों से नीचे उतरा। जयगोपाल ने घबराहट में भलीभाँति उसको न पहचान उसकी ओर सकेत कर दिया और स्वयं होस्टल की चारदीवारी के अन्दर जा आदेश के विरुद्ध तीन साइकिलों में से एक साइकिल ले चलता बना। इधर जब वह अग्रेज बाहर आ मोटर साइकिल को स्टार्ट करने लगा तो भगतसिंह को पिस्टल निकालने में कुछ विलम्ब हुआ। राजगुरु ने देखा कि अमूल्य समय बीता जा रहा है और शायद चिड़िया हाथ से निकल जाए। वह आगे बढ़ा और उस अग्रेज को अपनी गोली का निशाना बनाया। भगतसिंह भी तब तक सभल गया था। उसने भी तीन चार गोलियाँ उस पर दाग दीं। दोनों उस अग्रेज को पृथ्वी पर गिरते देख होस्टल की चार दीवारी फादने के लिए पीछे लौटे। उतनी देर में एक और सफेद चमड़ी वाला व्यक्ति उनकी ओर पिस्तौल लिए लपका। पण्डित जी ने उसको आते देख उसको खबरदार किया और उसके न रुकने पर उसकी ओर परन्तु उसके ऊपर नहीं, एक गोली चलाई। वह व्यक्ति जो इन्स्पेक्टर फर्न था, चोट न लगते हुए भी उस तीन फुटी नाली में लेट गया जैसे मानो उसकी गोली लग गई थी। कुछ क्षण ही बाद एक भारतीय बर्दीपोश सिपाही भगतसिंह और राजगुरु की ओर रिवाल्वर लिए हुए दौड़ा। पण्डित जी ने उसको आता देख ऊँचे स्वर से कहा 'रुक जाओ वरना मारे जाओगे।' वह बढ़ता ही गया और पण्डित जी को लाचारीवश उस पर गोली चलानी पड़ी। वह एक ही गोली में डेर हो गया। दरअसल पण्डित जी ने उसको दो बार चेतावनी दी थी। इस व्यक्ति का नाम था चामनसिंह जो पुलिस का सब इन्स्पेक्टर था।

अब पण्डित जी ने भी होस्टल की दीवार फादी और अन्दर राजगुरु और भगतसिंह से जा मिले। वहाँ दो ही साइकिलें देख पण्डित जी एक पर सवार हो गए और दूसरी राजगुरु ने चलानी आरम्भ की। उसके पीछे कीले पर भगतसिंह खड़ा हो गया। पुलिस के लोग ने भी उनका पीछा करना नहीं छोड़ा था। शोर मचाते जा रहे थे 'पकड़ो, पकड़ो, चोर है, डाकू हैं, हट्टाये है' आदि। एक साइकिल पर दो सवार होने के कारण उनकी गति तेज न हो पाती थी और पीछा करने वाले लोग भी कुछ समीप आते जा रहे थे। रास्ते में एक माइकिल की दुकान आई। वहाँ भगतसिंह ने एक साइकिल सड़ी हुई देखी। समीप आते ही वह राजगुरु की साइकिल से बूद उस खड़ी हुई साइकिल

पर सवार हो तीनों चलते बने । वह साइकिल दुकान का मालिक भी 'पकड़ो, पकड़ो, चोर, चोर' कहता हुआ दूसरे पीछा करने वाले समूह में शामिल हो गया । परन्तु अब यह नौजवान तीन साइकिलों पर सवार थे अब इनको पकड़ना सुलभ नहीं था । जब पीछा करने वाले लोग आगों से ओझल हुए तो तीनों एक छेत्त में घुस कर दूसरी ओर निकल गए और फिर अपने स्थान मोजंग पर पहुँच गए ।

इस प्रकार दल ने लाला लाजपतराय की मानहानि का बदला ब्रिटिश सरकार के एक एजेंट साण्डर्स से लेकर लोगों के उबलते हुए जोश और क्रोध को कुछ शान्ति दी और आम जनता को गर्व के माय मिर उठाने का अवसर दिया ।

पुलिस की आंखों में धूल

साण्डर्स के वध से केवल लाहौर या पंजाब में ही नहीं समस्त भारत में सनमनी फैल गई। लाहौर में तो पुलिस और सी आई डी ने शहर को चारों ओर से घेर नाके-नाके पर रोक लगा दी। चलते फिरते पुरानों की तलाशियां लेने लगे। अनेक गिरफ्तारियां भी अन्धाधुन्ध की। परन्तु एक्शन लेने वालों को पकड़ने में असफल रह।

१८ मितम्बर को साण्डर्स के वध के दूसरे दिन सारे नगर में सी आई डी की आंखों में धूल भोंक एक लाल परचा बांटा गया जिसमें लिखा था कि साण्डर्स को मारकर आन्तिकारी दल ने लाला लाजपत राय की मानहानि का बदला लिया है और साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य को चेतावनी भी दी है।

पण्डित जी के सन्मुख अब एक जटिल समस्या थी, राजगुरु, भगत सिंह और अपने आपको लाहौर में सी आई डी के विस्तृत जाल में से बाहर निकालना परन्तु एक्शन के समय तथा उसके पश्चात् उनका दिभाग अति तीव्र गति से काम करता था। वह योजना बनाने और उसको पूरा करने में खूब चतुर थे। तरकीब सोच ही डाली।

भगवतीचरण बाहरा तथा दुर्गा भाभी का वर्णन पहले आ चुका है। भगवतीचरण थे तो गुजराती परिवार के परन्तु उनके पिता रेलवे में लाहौर में काम करते थे। भगवतीचरण का जन्म लाहौर ही में हुआ था। वह हर प्रकार से पंजाबी ही लगते थे। भगवतीचरण भी नेशनल कालिज के विद्यार्थी थे। वहां क्रान्ति का अध्ययन उन्हें जयचन्द्र विद्यालकार से मिला था। एक समय



माखतीचरण बोहरा, दुर्गा मांजी और उनका चार वर्षीय बालक शशि

भगवतीचरण ने किसी छोटे से एक्शन की एक योजना बना उसको जयचन्द्र जी के सामने रखा। जयचन्द्र जी ने तुरन्त ही उसको ठुकरा दिया और भगवतीचरण को सी. आई. डी की सर्विस में होना घोषित कर दिया। उस समय के पश्चात् जयचन्द्र का प्रभाव नवयुवकों पर से उठ गया था। पण्डित जी को जयचन्द्र जी की इस निया पर सदा ही दुख तथा रोष होता रहा। फिर भी वह जयचन्द्र जी का जिन्ना मान के साथ करते थे क्योंकि उन्होंने, पंजाब के नवयुवकों को क्रान्ति की ओर उत्तेजित किया था।

भगवतीचरण का विवाह दुर्गादेवी से हो चुका था। उनके एक पुत्र भी था जो उस समय लगभग चार-पाच साल का था। उसका नाम था शचि चौहान। भगवतीचरण के विरुद्ध पुलिस का वारण्ट था वह तो प्रायः घर से बाहर रहते थे परन्तु दुर्गा भाभी अपने पुत्र के साथ उस मकान में रहती थी। वह भी दल के कार्यों में यथोचित भाग लेती रहती थी। परन्तु अभी पुलिस के सन्देह से बाहर थी। साण्डर्स वध के समय भगवतीचरण कलकत्ते में थे।

पण्डित जी ने दुर्गा भाभी से मिलकर अपने तथा राजगुरु और भगतसिंह के लाहौर से बाहर जाने की योजना पक्की कर ली। भाभी ने फिर एक बार पण्डित जी को ५००) रुपये उस योजना को पूरा करने के लिए दिये।

हरमा के तीमरे-चौथे दिन लाहौर रेलवे स्टेशन पर एक सुन्दर युवक और एक सुन्दर युवती एवं चार वर्षीय बालक के साथ गाड़ी के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठे। उनके साथ एक नौकर बहरे के वेश में था जो साथ ही के थर्ड क्लास के डिब्बे में बैठा था परन्तु बार-बार आकर उस 'दम्पति' को सलाम भालता था और उनकी आवश्यकताएँ पूरी करता था। उसी गाड़ी के एक थर्ड क्लास के डिब्बे में एक सण्ट-भुसण्ट साधु, शरीर पर भभूत मते रामनौमी का दुपट्टा गले में ढाते परन्तु सर मुड़े, हाथ में कमडल নিয়ে बैठा हुआ दिखाई दिया। जब दम्पति स्टेशन पर पहुँचे तो उन्होंने उन साधु को प्रणाम किया और कुछ दक्षिणा दी। दम्पति को छोड़ने कुछ अन्य पुरुष तथा स्त्रियाँ भी आई थी। उन्होंने भी उन साधु महात्मा को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लिया। स्टेशन पर सी. आई. डी. का जोर था। उसका एक इन्स्पेक्टर यह सब देख रहा था। उसने कुछ लोगों से पूछा जिन्होंने ना मातूम होते हुए भी उन साधु को पहुँचा हुआ महात्मा बताया। इन्स्पेक्टर भी उनके सामने गया और उनमें अपने काम में सफलता मिलने की दुआ मांगी। साधु ने कहा, 'होगी' परन्तु कुछ मुनफे के लिए दक्षिणा अवश्य देनी होगी। इन्स्पेक्टर ने पार आने जब ने निवान कर उनको दे दिये।

पाठकों को ज्ञात हो ही गया होगा कि यह मय व्यक्ति कौन थे । 'दम्पति' के रूप में थे भगतसिंह (जिसने साण्डर्स एक्शन के पदचात अपने केश कटवा लिए थे) और दुर्गा भाभी तथा उनके साथ उनका लड़का था और साधु के वेश में और कोई नहीं स्वयं पण्डित जी ही थे । राजगुरु दम्पति का नौकर बनकर लाहौर छोड़ रहा था ।

इस प्रकार पण्डित जी, भगतसिंह और राजगुरु को अपने साथ ले पुलिस तथा सी० आई० डी० की आंखों में धूल भोव लाहौर से बाहर चले गये । पुलिस हाथ पर हाथ धरे बैठी रह गई । हा उन्होंने डी ए बी स्कूल के अध्यापक को जो बारदात के समय होस्टल में पाया गया था, खूब मारा, परन्तु उस वीर से पुलिस को मारने वालों का कोई सुराग नहीं मिला । जब लाहौर पड़्यन्त्र केस चल रहा था जिसमें भगतसिंह और राजगुरु आदि अभियुक्त थे पुलिस ने उस अध्यापक को पकड़ कर फिर मारा और प्रयत्न किया कि वह उन दोनों को पहचान ले परन्तु उसने पहचानने से इन्कार कर दिया । काश, उस अध्यापक का नाम मालूम होता तो मैं अपनी श्रद्धाजलि उसका नाम लेकर उसको भेंट करता । पण्डित जी ने कई बार उम वीर अध्यापक की तारीफ मेरे सामने की थी ।

बम के कारखाने

लाहौर से बाहर निकल पण्डित जी तो आगरा आ गए और फिर भासी चले गये भगतसिंह तथा भाभी दोनों कलकत्ते चले गए । वहां मुशीला-देवी जो जालन्धर कन्या महाविद्यालय की स्नातिका थी, एक मारवाड़ी परिवार की किसी एक लड़की को पढ़ाती थी । यह लोग कलकत्ते में उन्हीं के पास ठहरे । मुशीला जी का पार्टी नाम दीदी था । वहां भगतसिंह यतीन्द्रनाथ दास से भी मिला जिसने उसको तथा फणीन्द्रनाथ घोष, कमलनाथ तिवारी और विजय-बुमार सिनहा को गनकाटन बनाना सिखाया था ।

इस समय आगरे में एक केन्द्र खुला हुआ था । वे लोग कलकत्ते से आगरे आए, जहां पण्डित जी और भगवतीचरण भी आ मिले । यहां बमों के खोल बनाए गये और यतीन्द्रनाथ दास की सहायता से पिकरिक् ऐसिड भी तैयार किया गया । लाहौर से मुखदेव और कुन्दनलाल आये, और यह सब त्रियाए सोख कर लौट गए । गनकाटन कलकत्ते में तैयार करके लाया गया था—बम बनाने या मसाला तैयार करने के अतिरिक्त श्रान्तिकारियों के इतिहास भी पढ़े गये और आपस में विचार-विमर्श, तर्क-वितर्क आदि भी चलते रहे । साथ ही

पण्डित जी सभी सदस्यों को एक-एक, दो-दो करके बुन्देलखण्ड की खाडियों में पिस्तौल, रिवालवर और राइफल के चलाने का अभ्यास भी कराते रहे ।

यह यह बताना अनुचित न होगा कि पण्डित जी सदैव की भाँति स्त्रियों के नाम से चिढ़ते थे । वह कहते थे कि जिन लोगों ने अपने जीवन अपनी हथेलियों में रखे हैं, उनको स्त्रियों की ओर ध्यान ही नहीं देना चाहिए । वह अपने विचारों में कहाँ तक सही थे, इसी से प्रमाणित हो जाता है कि एक वर्ष पश्चात् केवल दो-तीन स्त्रियों के परिचय से ही दल में फूट पड़ गई थी, दल के कई सदस्य अपने उद्देश्य से गिर गए थे और यशपाल को तो गोली मार देने तक का निश्चय किया गया था ।

फिर भी दल में लाहौर में भाभी और दीदी और कानपुर में श्री देवी मुसद्दी जैसी स्त्रियों से उन्हें घृणा नहीं थी । वह उनका आदर करते थे और उनसे यथासमय दल का काम निकालते थे ।

यह वह समय था जबकि काकोरी पड़्यन्न कैस के पश्चात् पहली बार और उस समय से भी कहीं अधिक व्यापक दल का संगठन भारत के लगभग पूरे उत्तरी भाग में विस्तृत हो गया था; केवल पण्डित जी के प्रयत्न से । पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, यू० पी०, आधुनिक मध्य प्रदेश, बिहार आदि में दल के केन्द्र खोल दिए गए थे और संगठनकर्ता नियुक्त कर दिए गए थे । बंगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रान्तों में भी दल का काम आरम्भ हो गया था । पण्डित जी का प्रयत्न था कि समस्त भारतवर्ष में जगह-जगह केन्द्र खोल कर एक ही दिन सभी स्थानों पर एक ही प्रकार का एक्शन किया जाए जिससे अंग्रेज सरकार को क्रान्ति-कारियों की शक्ति और उनके आन्दोलन की व्यापकता प्रतीत हो जाए ।

इस समय आगरा सेण्ट्रल जेल में काकोरी अभियोग में आजन्म कारावास दण्डित श्री जोगेश चटर्जी सजा काट रहे थे । पण्डित जी को उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी । पण्डित जी ने उनसे सम्पर्क बनाया और उनके छुड़ाने की योजना तैयार की । परन्तु जब शिव वर्मा और विजयकुमार सिनहा जोगेश दा से मिले तो पुलिस को उन पर सन्देह हो गया और जोगेश दा का तवादला आगरा जेल से निश्चित समय से पहले ही कर दिया गया और इस प्रकार उनके छुड़ाने की योजना असफल रह गई । जोगेश दा को जेल से छुड़ाने का व्यौरा श्री बटुकेश्वर दत्त ने मुझे इस प्रकार बताया

क्रान्तिकारी दल को ज्ञात हुआ कि जेल के अधिकारी जोगेश दा को आगरा जेल से लखनऊ जेल शीघ्र ही ले जाने वाले हैं । आजाद की तैयारी की

हुई योजना के अनुसार उनको जब सशस्त्र पुलिस आगरे स्टेशन पर गाड़ी में बಿठाने लाती तो उस समय पुलिस पर धावा घोल जोगेश दा को बचा कर ले जाते। बटुकेश्वर दत्त का काम था स्टेशन पर सड़ें रहकर जोगेश दा का आना देखना और उनके आते ही दल को सूचित कर देना। बटुकेश्वर दत्त स्टेशन पर पठान का पहनावा पहन जोगेश दा की प्रतीक्षा करता रहा। एक दिन जोगेश दा गाड़ी के छूटने से कुछ ही मिनट पहिले लाये गए और गाड़ी दत्त के देखते-देखते छूट गई।

दत्त ने आकर दल के नेताओं को यह बताया। पण्डित जी दल के सदस्यों को लै सीधे कानपुर चले गए। वहा जोगेश दा स्टेशन के पुलिस लीकअप में थे। सोचा पुलिस के लीकअप से उनको बचाने में कई जानें जायेंगी। यही निश्चय हुआ कि जब उनको रेलगाड़ी से ले जाया जाय तो गंगापार गाड़ी को रोक उनको बचा लिया जाये। दत्त को साइकिल लिये गंगा के पुल पर सड़ा रहने के लिए आर्डर मिला। वह वहा नियत समय पर पहुच गया। गाड़ी आई और चली गई परन्तु न पण्डित जी थे और न ही दल के अन्य सदस्य। जब दत्त कानपुर स्टेशन पहुचा तो देखा कि पण्डित जी और भगतसिंह में वाद-विवाद हो रहा है। कारण का पता नहीं चल सका।

वैशम्पायन के अनुसार यह एक्शन दो कारणों वश रोकना पडा था। एक था आजाद की जेब कट जाना जिसमे उनके ५०) रुपये निकल गए थे। दूसरा कारण था कानपुर में जोगेश दा को छुड़ा कर सुरक्षित स्थान पर रखने का अभाव। तीसरा कारण यह भी था कि पुलिस की अधिकता, विशेष प्रबन्ध और दल के बहुत थोडे सदस्य।

इससे पहले भी फतहगढ जेल से उनको छुड़ाने का कार्य भी असफल ही रहा था और जोगेश दा कांग्रेस के शासन आने के पश्चात् ही १९३७ में बाहर आ सके !

आगरे के केन्द्र का काम समाप्त होने के पश्चात् उस केन्द्र को बन्द कर दिया गया और उसके स्थान पर दिल्ली में केन्द्र बनाया गया। शिव वर्मा ने सहारनपुर में और लाहौर में सुखदेव ने बम बनाने की फैक्टरिया चालू कर दी। मसाला आगरे से तैयार किया हुआ उनको पहुचामा गया। यही मसाला कानपुर की बम फैक्टरियों में भी भेजा जा रहा था। पूरे तैयार किए हुए बमों की परीक्षा, भासी के जंगलों में, दिल्ली के खण्डहरो और कानपुर से कुछ दूर जंगलों में की गई और सभी बम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। यही के तैयार किये

हुए वम लार्ड माइमन को मारने के लिए भेजे गये थे परन्तु ट्रेन में अकस्मात् फट जाने के कारण ट्रेन का डब्बा ही उड़ गया था और दो शान्तिकारी मारे गए थे और एक घुरी तरह घायल हो गया था ।

दल का कार्य पण्डित जी के अनथक परिश्रम से दिनोदिन बढ़ता जा रहा था । पंजाब में सुवर्देव ने बहुत से सदस्य बना लिए थे । दिल्ली में काशी-राम और कैलाशपति दल के भार को सभाले हुए थे । यू० पी० में वीरभद्र तिवारी दल का दायरा बढ़ता जा रहा था । उस समय सी० पी० (आधुनिक मध्यप्रदेश) में भानुप्रताप, डी० बी० तैंग, पोद्दार, बिहार में फणीन्द्रनाथ घोष और बम्बई में राजगुरु आदि दल की शक्ति बढ़ाने में सलग्न थे । राजस्थान में अर्जुनलाल सेठी, शक्तिनारायण धुवना, रघुदत्त और मदनगोपाल दल के काम में यत्नशील थे । पण्डित जी स्वयं इन सब केन्द्रों का दौरा लगाते रहते थे और सगठन को सुचारु रूप से सभाल रहे थे । इस काम में भगवतीचरण उनके दाए हाथ थे और वैशम्पायन पण्डित जी के सन्देश भिन्न-भिन्न केन्द्रों के नेताओं को पहुंचाता रहता था ।

एक ओर जहां दल का काम बढ़ता जा रहा था, सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि हो रही थी और केन्द्र भी विस्तृत होने जा रहे थे, दूसरी ओर धन का अभाव और भी अधिक प्रतीत होने लगा था । साण्डर्स वष से कुछ स्थिति बदली थी परन्तु इतनी मात्रा में नहीं कि जिससे दल के प्रत्येक दिन के बढ़ते हुए काम का खर्च चल सके । उस समय पण्डित जी को भगवतीचरण, भगवान्ह, यशपाल आदि ने समझाया कि दल को फिर से एक गुना एकजान करना चाहिए जिससे आम जनता का ध्यान उनकी ओर अधिक आकर्षित हो । यह आवश्यक हो गया था क्योंकि दल के कई सदस्य, गिर वमां, जयदेव बपूर आदि वगैरे विगी एक्शन के ही महारनपुर में पकड़े जा चुके थे ।

दिल्ली असेम्बली बम कांड

मार्च १९२६ में आगरे में दल की एक विशेष सभा हुई जिसमें दल के लगभग सभी नेता और कई सदस्य सम्मिलित हुए। उन दिनों असेम्बली में सरकार की ओर से दो बिल रखे गए थे, एक था (Trade Disputes Act) औद्योगिक विवाद कानून और दूसरा (Public Safety Bill) सार्वजनिक सुरक्षा कानून। इन दोनों कानूनों का अभिप्राय था जनता की स्वतन्त्रता की भावना को कुचलना और उसके असन्तोष को दवाना। इन दोनों कानूनों का विरोध समस्त भारतवर्ष कर रहा था। असेम्बली में सरकारी अफसर और उनके पिट्ठुओं को छोड़ सभी सदस्य उनके विरुद्ध थे।

क्रान्तिदल की केन्द्रीय कमिटी ने यह सुझाव पास किया कि जिस समय जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों के घोर विरोध के होते हुए भी सरकार उन दोनों बिलों को पास हुआ घोषित करे उसी समय असेम्बली में बम फेंका जाए और सारे देश में भली भाँति उससे लाभ उठाया जाए। केन्द्रीय कमिटी के सामने सबसे बड़ा प्रश्न था कि यह काम कौन करे। उस समय तक पण्डित जी के विरुद्ध सरकार ने उनके पकड़े जाने के लिए अनेक इनाम घोषित कर दिए थे। बीसियों आदमियों को उनको पहचानने और पकड़वाने में सहायता देने के लिए अपनी नौकरी में रख लिया था। उनमें से कुछ तो उनको पहचानते थे परंतु अधिकतर सरकार को धोखा दे अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। भारत के किसी कोने में भी कोई क्रान्तिकारी छोटा या बड़ा एक्शन हो, उससे पण्डित जी का नाम संबंधित होता था। आम जनता में पण्डित जी के नाम के प्रति श्रद्धा दिनोदिन बढ़ती जा

रही थी। पण्डित जी ने सोचा यदि वह स्वयं असेम्बली का एक्शन करे और एक्शन के बाद या तो निकल जाए या लड़ते हुए वहीं मारे जाए तो उससे दल को जनता की सहायता तथा सहानुभूति पर्याप्त मात्रा में मिल जाएगी। परन्तु जब उन्होंने अपने आपको उस मीटिंग में इस एक्शन के लिए पेश किया तो एक भी सदस्य उनसे सहमत नहीं हुआ। सभी जानते थे कि रामप्रसाद बिस्मिल के पकड़े जाने के पश्चात् दल को दोबारा खड़ा करने का सौभाग्य पण्डित जी को ही प्राप्त था और वह ही दल की आत्मा तथा शरीर (रूह और कालिब) थे। अन्य कितने ही सदस्यों ने भी अपने को आगे रखा। परन्तु अन्त में भगतसिंह ने अपने आपको अधिक जोर के साथ पेश किया।

भगतसिंह को अपने आपको पेश करने के पीछे एक भेद था। वह इस प्रकार था - भगतसिंह साण्डर्स वध के बाद लगभग पंजाब के बाहर ही रहा था। वह अधिकतर पण्डित जी के साथ यू० पी० में ही दल का काम कर रहा था। कई बार पंजाब भी हो आया था, परन्तु वहाँ अधिक देर ठहरा नहीं था। उसका अधिक समय भिन्न-भिन्न देशों के श्रान्तिकारियों के इतिहासों के पढ़ने में व्यतीत होता था। एक बार वह पण्डित जी के कहने पर पण्डित मोतीलाल नेहरू से भी मिला था परन्तु आर्थिक सहायता मागने पर नेहरू जी ने उस समय उसे दुत्कार दिया था। इस बात का पण्डित चन्द्रशेखर को बहुत दुःख हुआ था। उधर पंजाब में सुखदेव का कार्यक्षेत्र विस्तृत होता जा रहा था। उसको भगतसिंह का पंजाब से बाहर रहना और वहाँ भी उसका चुप बैठे रहना भाया नहीं। उसने उस केन्द्रीय दल की सभा में भगतसिंह को एक ओर ले जाकर बहुत घुरा-भला कहा और कायर बताया। भगतसिंह ने सुखदेव की बातों को बड़ी गम्भीरता से सुना। उसको अत्यन्त दुःख हुआ और उसने अपने आपको दल के सामने असेम्बली में बम फेंकने के लिए पेश किया और दल को उसके आत्म-बलिदान करने के प्रस्ताव को मजबूरी देने के लिए मजबूर कर दिया। पण्डित जी भी नहीं चाहते थे कि भगतसिंह उस कार्य को करे। उनको उस पर पूर्ण विश्वास था और उससे दल के अनेक कामों तथा एक्शनो में भाग लेने की आशाएँ थीं। वह तो चाहते थे कि असेम्बली में बम फेंक कर बैबल अंग्रेजी सरकार को अपने दल का वन प्रमाणित कर दें और साथ ही जनता की सहा-नुभूति दल को प्राप्त हो जाए।

परन्तु भगतसिंह के आग्रह के पश्चात् उनको उससे आत्म-बलिदान के लिए स्वीकृति देनी ही पड़ी। भगतसिंह अकेला ही जाना चाहता था परन्तु

बटुबेस्वरदत्त ने जो यू० पी० मे ही दल के सगठन में व्यस्त था, उसका साथ देने पर जोर दिया और भगतसिंह तथा दत्त को दल ने स्वीकृति दे दी ।

योजना पण्डित जी ने बनाई जो इस प्रकार थी दल के छै सदस्य, पण्डित जी, भगवतीचरण, सुमदेय, वैशम्पायन, भगतसिंह और बटुबेस्वर दत्त असेम्बली में जाएंगे । असेम्बली के बाहर दल की मोटरकार खड़ी रहेगी । (यह कार कुछ दिन पहले ही खरीद ली गई थी) सवेन करने पर भगतसिंह और दत्त को छोड़ चारों अन्य साथी बाहर आ जाएंगे और पण्डित जी कार स्टार्ट कर तैयार रहेंगे । चारों साथी रिवाल्वरों से लैस होंगे । इन साथियों के असेम्बली गैलरी से बाहर निकलने के पांच मिनट बाद भगतसिंह हाल में बम फेंकेगा । केवल दत्त के ही पास पिस्तौल था । बम फेंकने के पश्चात् दत्त उस समय के होम मेम्बर सर जेम्स क्रैरर को गोली मारेगा और उस गडबड में यदि अवसर मिला तो दोनों लड़ते-लड़ते बाहर निकल आएंगे जहां कार उनकी प्रतीक्षा में खड़ी होगी और फिर वे सब वहां से निकल जाएंगे । हा यदि भगतसिंह और दत्त को बाहर निकलने का अवसर न मिले तो वही लड़ते हुए अपने जीवन का बलिदान कर देंगे ।

इस सम्बन्ध में मैंने बटुबेस्वर दत्त से भी पूछा, उस समय जब वह कैंसर के रोग से पीड़ित देहली के एक हस्पताल में चिकित्सा करा रहा था ।

उसने बताया कि वह दल की केन्द्रीय समिति में उपस्थित नहीं था जब असेम्बली में बम फेंकने का निश्चय हुआ था । परन्तु जब वह भगतसिंह के साथ असेम्बली में गया था तो न तो उसके पास कोई रिवाल्वर ही था और न ही उन दोनों के बम फेंकने के पश्चात् बाहर जाने का कोई फैसला । इससे यही प्रत्यक्ष है कि आज़ाद का उन दोनों के बचाने का सुझाव केन्द्रीय समिति ने मंजूर नहीं किया था ।

दल के इस एक्शन का अभिप्राय था काले बिलो का विरोध तथा असेम्बली में परचे फेंक कर जनता तथा ससार के सम्मुख यह बताना कि जनता और विशेषकर क्रान्तिकारी सरकार की दमन नीति को चुप बैठ कर नहीं देख सकते और कांग्रेसी नेताओं को यह जताना कि सरकार वैधानिक तरीकों से उनके देश को कभी स्वाधीन नहीं करने देगी ।

इस काण्ड से पहले पण्डित जी और भगतसिंह ने भगवतीचरण के साथ असेम्बली में छोड़े जाने वाले एक बम की परीक्षा तुगलकाबाद के खण्डहंगे में कर ली थी ।

७ अप्रैल को काशीराम ने मेरे द्वारा असेम्बली के चार प्रवेश-पत्रों का प्रबंध कर लिया था। उस समय मैं एम० ए० की परीक्षा देने वाला था और जमना किनारे कुदसिया घाट में मेरे रामसरूप घी वाले घाट के एक कमरे में रहता था। वहाँ लगभग हर दिन के० सी० राय आते थे जो उस समय के एसोसिएटेड प्रेस के चीफ थे। वह मेरे मित्र हो गए थे और कई बार अपनी कोठी पर ले जाते थे। वह असेम्बली के सदस्य थे। मैंने उनसे ही चार प्रवेश-पत्रों का प्रबंध किया था। वम काण्ड के एकदम बाद वह अपनी कार में सीधे मेरे पास आए और वम काण्ड का वर्णन कर मुझ से पूछा कि कहीं मैंने उनके द्वारा दिए गए प्रवेश-पत्र उन क्रान्तिकारियों को तो नहीं दिए थे। मैंने उनको आश्वासन दिलाया कि मैं किसी क्रान्तिकारी को नहीं जानता और उनको मेरे द्वारा कोई आपत्ति नहीं होगी। इस आश्वासन के पश्चात् वह उन दोनों क्रान्तिकारियों की प्रशंसा करने लगे और मैं उत्सुक बना सुनता रहा। मेरे आश्वासन देने का कारण था, वह दल का निश्चय कि जब दल के अन्य सदस्य असेम्बली से बाहर आएंगे तब सभी प्रवेश-पत्रों को नष्ट कर देंगे।

बटुकेश्वर दत्त ने पूछने पर बताया कि जब आगरे में दल की बैठक में भगतसिंह और उनको असेम्बली में वम फेंकने का निश्चय किया था उस समय उनको बाहर लाने की कोई बात नहीं हुई थी। उनका काम तो केवल वम फेंक कर दल के पत्र को असेम्बली के बीच विस्तृत करना था उसके पश्चात् आत्म-समर्पण। पकड़ जाने के पश्चात् अभियोग का सहारा ले अधिक से अधिक दल के उद्देश्यों का प्रचार करना था।

हो सकता है आगरे में ऐसा ही निश्चय हुआ हो और बाद में पण्डित जी ने उनको बाहर ले आने की योजना भी बना ली हो।

दत्त ने यह भी बताया कि उसके पास रिवाल्वर नहीं था।

८ अप्रैल १९२६ को छ में से चार सदस्य तो पब्लिक गैलरी के मध्य में बैठे। भगतसिंह और दत्त बाईं ओर के कोने के पास जाकर आग की सीटों पर बैठे। ठीक उनके नीचे सरकारी आफिसर बैठे हुए थे। संकेत पाने पर पण्डित जी, भगवतीचरण, सुखदेव और वैशम्पायन बाहर निकल आए और कार को स्टार्ट कर उसमें बैठ गए। उधर भगतसिंह ने पांच मिनट बाद असेम्बली में सरकारी आफिसरों के समीप वम फेंका और दोनों जोर से चिल्लाए “इन्कलाव जिन्दावाद,” “साम्राज्यवाद का नाश हो,” “दुनिया के

मजदूरो एव हो जाओ," "एच एम आर ए जिन्दाबाद"। साथ ही उन्होंने लाल पर्वे हॉल में फेंके जो हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के बमण्डर-इन-चीफ बलराज के नाम से छप थे। यह बमण्डर इन-चीफ और कोई नहीं, पण्डित चन्द्रशेखर आज़ाद ही थे। उन पर्वों का आनाम इस प्रकार था "वहरो को सुनाने के लिए विस्फोट के बहुत उच्चे शब्द की आवश्यकता होती है।"

"पिछले दस वर्षों में ब्रिटिश सरकार द्वारा शासन सुधार के नाम पर इस देश का अपमान करने की कहानियां दुहराने की आवश्यकता नहीं है और न ही हिन्दुस्तानी असेम्बली पुकारी जाने वाली इस सभा द्वारा हिन्दुस्तानी राष्ट्र के सिर पर पत्थर फेंक-फेंक कर हमारा अपमान करने के उदाहरणों को याद दिलाने की आवश्यकता है। यह सब सुपरिचित और स्पष्ट है। आज फिर जब-कि जनता साइमन कमीशन से कुछ सुधारों के टुकड़ों की आशा में आले फंताए है और इन टुकड़ों के लोभ में आपस में भगडा कर रही है, विदेशी सरकार सार्वजनिक सुरक्षा और औद्योगिक विवाद कानूनों के रूप में अपने दमन को और भी कडा कर देने का यत्न कर रही है। इसके साथ ही आने वाले अधिवेशन में समाचारपत्रों द्वारा राजद्रोह रोकने के कानून जनता पर थोप देने की धमकी दी जा रही है। सार्वजनिक काम करने वाले मजदूर नेताओं की अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियां यह स्पष्ट कर देती है कि सरकार की विचारधारा क्या है।

'राष्ट्रीय दमन और अपमान की इस उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में अपने उत्तरदायित्व की गम्भीरता अनुभव करके हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सघ ने अपनी सेना को यह कदम उठाने की आज्ञा दी है। इस कार्य का प्रयोजन है कि कानून का यह अपमानजनक प्रहसन समाप्त कर दिया जाए। विदेशी शोषक नौकरशाही जो चाहे करें। परन्तु उसके वैधानिकता का नकाब फाड़ देना आवश्यक है।

जनता के प्रतिनिधियों से हमारा आग्रह है कि वह इस असेम्बली के पाखण्ड को छोड़कर अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों में लौट जाए और जनता को विदेशी दमन और शोषण के विरुद्ध क्रान्ति के लिए तैयार करें। हम विदेशी सरकार को यह बता देना चाहते हैं कि हम देश की जनता की ओर से सार्वजनिक सुरक्षा और औद्योगिक विवादों के दमनकारी कानूनों और लाला लाजपतराय की हत्या के विरोध में यह कदम उठा रहे हैं।

'हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य

मे विश्वास रखते हैं जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का अवसर मिल सके। हम मानव रक्त के बहाने और अपनी विवशता के लिए दुखी है, परन्तु शान्ति द्वारा सबको समान स्वतन्त्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करने के लिए शान्ति में कुछ-न-कुछ रक्तपात अनिवार्य है।

‘इन्कलाब जिन्दाबाद !’ ”

ह० बलराज

कमाण्डर-इन-चीफ

बम के फटते ही सरकारी आफिसर अपनी-अपनी मेजों के नीचे छिप गए। सर जेम्स क्रेरार भी, जो उस समय गृह मेम्बर था, मेज के नीचे छिप गया। परन्तु पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा अन्य कांग्रेसी सदस्य अपने-अपने स्थानों पर वैसे ही बैठे रहे। पण्डित मोतीलाल नेहरू के मुख पर तो मुस्कराहट थी। भगतसिंह और दत्त वही पकड़े गये और पण्डित जी अपने अन्य साथियों के साथ पाच-सात मिनट के पश्चात् वहां से बाहर चले गये।

भगतसिंह और दत्त दोनों पर मुकदमा चला। उन दोनों ने भरसक शान्तिकारी दल के उद्देश्य का प्रचार करने का प्रयत्न किया। दोनों को आजीवन कारावास दे दिया गया।

जनवरी १९३० में जब भगतसिंह तथा दत्त की अपील हाई कोर्ट, लाहौर में हुई, तो भगतसिंह ने एक वक्तव्य दिया जिसमें कहा था—“हमें जो दण्ड दिया गया है उसके विषय में हमें कोई आपत्ति नहीं है। हम यदि कोई आपत्ति है तो हत्यारे बंधे जाने पर। शान्ति का विरोध करने वाले लोग केवल बम, पिस्तौल, तलवार और रक्तपात को ही शान्ति का नाम दे देते हैं परन्तु शान्ति इतने में ही सीमित नहीं है। यह सब शान्ति के उपकरण हो सकते हैं परन्तु इनके उपयोग के पीछे होती है समाज की आर्थिक और राजनैतिक स्थिति बदलने की जन भावना। हमारी आज की परिस्थितियों में शान्ति का उद्देश्य कुछ व्यक्तियों का रक्तपात करना मात्र नहीं है बल्कि उसका उद्देश्य है, मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण की प्रथा को समाप्त करना तथा इस देश के भविष्य के लिए आत्म-निर्णय के अधिकार को प्राप्त करना।”

यह तो विदित ही है कि भगतसिंह तथा दत्त ने अपनी इच्छा से असेम्बली में जाकर बम फेंका था। यदि वे इच्छा प्रकट करत तो उनको स्थल

से बाहर निकाल ले जाने की व्यवस्था भी थी। परन्तु उन्होंने तो एक उद्देश्य को लेकर अपनी आहुति देने का निश्चय किया था। वह उद्देश्य था जनता के सामने क्रान्तिकारियों का असली रूप रखना, उनमें जागृति उत्पन्न करना, क्रान्तिकारी दल के प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त करना और ब्रिटिश सरकार तथा उनके पिट्ठुओं को यह डके की चोट पर बताना कि क्रान्तिकारी केवल मार-पीट में ही विश्वास नहीं रखते, वे तो एक विशेष उद्देश्य को लेकर हथेलियों पर जान रखकर आगे बढ़े हैं और वे ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति के सामने झुकने वाले नहीं हैं।

इसी उद्देश्य से उन्होंने हाईकोर्ट में अपील की थी जिससे कि क्रान्तिकारी दल के उद्देश्यों के प्रचार करने में उनको एक और अवसर मिल जाये। उन्होंने अपने छूटने के लिए अपील नहीं की थी।

असेम्बली वम काण्ड के पश्चात् भगतसिंह और दत्त के साथ लिये हुए फोटो केवल दिल्ली में ही नहीं अपितु समस्त भारत में बाँटे गये थे। जनता के हृदयों में उनकी वीरता की झलक दिखाई देने लगी थी। दोनों का नाम गर्व के साथ लिया जाने लगा था। युवकों में भी कुछ जोश नजर आने लगा था। परन्तु इससे दल को कोई अधिक लाभ नहीं पहुँचा था। आर्थिक दशा तो वैसी ही बनी रही थी।

परन्तु समस्त भारत में भगत दत्त के फोटो के प्रचार ने सरकार को चौकन्ना अवश्य कर दिया था। प्रत्येक पुलिस एक्शन और घर-पकड़ के पश्चात् वे सोचते थे कि क्रान्ति दल समाप्त हो गया, परन्तु थोड़े ही दिनों में उनका यह भ्रम दूर हो जाता था।

पुलिस अभी साण्डर्स की हत्या की समस्या को हल करने भी नहीं पाई थी कि असेम्बली में वम फेंका गया। पुलिस को सन्देह था कि साण्डर्स की हत्या में भगतसिंह का हाथ था। पुलिस के वयान के अनुसार भगतसिंह के पास जो रिवाल्वर असेम्बली में पकड़ा गया था पुलिस के विशेष जाँचकारों ने बताया कि यही रिवाल्वर साण्डर्स की हत्या के समय काम में लाया गया था।

वयन में कहा तब सत्यता है मैं नहीं कह सकता, ऐसा बैंगम्पायन ने कहा है। परन्तु मुझे तो दत्त ने अपनी मृत्यु में कुछ दिन ही पहले बताया था कि रिवाल्वर या पिस्टल न तो उनके पास था और न ही भगतसिंह के पास, जब वे दोनों पकड़े गये थे।

अपितु पुलिस लाहौर में विशेषकर सतर्क हो गई और उसने युवको तथा सन्दिग्ध स्थानों की निगरानी बढ़ा दी। उस विशेष निगरानी का फल उनको शीघ्र ही मिल गया।

नवयुवको में कुछ जोश भी बढ़ा, परन्तु दल की आर्थिक स्थिति जहा की तहा बनी रही और दल का एक समझदार, सुशिक्षित और तल्लीन होकर काम करने वाला साथी भी खो गया। परन्तु पण्डित जी तो लोहे के बने हुए थे। ऐसे आघात पहले भी सहन कर चुके थे। वह फिर से दल को यथाशक्ति शक्तिशाली बनाने के काम में जुट गए।

लाहौर में सुखदेव, भगवतीचरण, घनवन्तरी और यशपाल तथा अनेको अन्य साथियों के साथ बम का मसाला बनाने में जुटा हुआ था। दिल्ली में कैलाशपति लगभग २० सदस्य बनाने में सफल होकर उनको शूटिंग की प्रैक्टिस दे रहा था। काशीराम उसको पूर्णरूप में सहयोग दे रहा था। यू पी को पण्डित जी ने अपना हेडक्वार्टर बना रखा था, परन्तु वीरभद्र तिवारी सचालक था। मनीलाल अवस्थी, कैलाशनाथ, राजेन्द्रदत्त निगम, रामचन्द्र मुसद्दी आदि से पूर्ण सहयोग प्राप्त था। भानुप्रताप और पोद्दार मध्य भारत को सम्भाले थे। यू० पी० में वीरेन्द्र और सुरेन्द्र पाण्डे, सालिगराम शुक्ल, विजयकुमार सिनहा, अजयकुमार घोष, सत्गुरदयाल अवस्थी सारे प्रदेश में घूम-घूम कर दल के संगठन की जड़ें मजबूत कर रहे थे। अनेक नए सदस्य बना लिए गये थे। जिन लोगों को घर छोड़ने पड़े थे उनके लिए सुरक्षित स्थानों का प्रबन्ध किया गया था और उनकी आत्मरक्षा के लिए पिस्तौल या रिवॉल्वर दे दिए गए थे। उधर पण्डित जी हथियारों के एकत्रित करने में जुट थे और साथ ही उन्होंने दल के सदस्यों की शूटिंग-प्रैक्टिस का भी प्रबन्ध कर दिया था। बुलन्दशहर जिले के नलगढा गांव में रामचन्द्र शर्मा ने एक फार्म लिया हुआ था। वहां पण्डित जी स्वयं भी जाते थे और अन्य सदस्यों को भी शूटिंग-प्रैक्टिस कराते थे।

बानपुर में बमों के खोल बनाने की फैक्टरी चालू थी।

लाहौर में सुखदेव ने किला गूजरमिह में एक कमरा किराए पर ले लिया था। यहां पिकरिक् एसिड बनाया जाता था। पिकरिक् एसिड पीला होता है और बेचन हाथ ही पीले नहीं कर देता, जहां से इमका घोसा हुआ पानी बहता है उस स्थान को भी पीना कर देना है। उस कमरे से बाहर बहने वाली नाली पीनी पड़ चुकी थी और उसमें से पिकरिक् एसिड की गन्ध भी आन लगी थी।

परन्तु इसे ओर मुखदेव या अन्य किसी सदस्य का ध्यान नहीं गया । गया तो केवल सी० आई० डी० के जासूसों का । उन्होंने अप्रैल १९२६ में एक दिन उस कमरे पर धावा बोल दिया । उस समय मुखदेव और जयगोपाल वहाँ मौजूद थे । दोनों ही पकड़ लिए गए । साथ ही पिकरिक एसिड और उसके बनाने का सामान भी पकड़ा गया । इस प्रकार सी० आई० डी० क्रान्ति दल का सुराग लगाने में सफल हो गई ।

लाहौर का पहला षड्यंत्र केस

सुखदेव और जयगोपाल को सी० आई० डी० ने लाहौर किले की कोठरियों में बन्द कर उन को अमानुषिक बर्बरता से आरम्भ कर दिए। दुर्भाग्य-वश सुखदेव, जिसके एक ताने के कहने से भगतसिंह ने अपने आपको अग्नि में भोक दिया था, स्वयं ठोस प्रमाणित नहीं हुआ। वह पुलिस के कण्टो को सहन न कर सका या किसी और कारणवश उसने पुलिस को पंजाब क्रान्तिकारी दल के सभी भेद बताने आरम्भ कर दिए। केवल पंजाब के ही नहीं, जहाँ-जहाँ के पते उसे मालूम थे, उसने पुलिस को बता दिए। पंजाब के तो लगभग सभी साथी पकड़ लिए गए। परन्तु घनवन्तरी, भगवतीचरण, यशपाल, भाभी और दीदी दिल्ली आ जाने के कारण बच गए। पण्डित जी उस समय भासी में अड़ड़ा जमाये हुए थे। वह पता सुखदेव को मालूम नहीं था, इसलिए पुलिस उन तक नहीं पहुँच सकी। सुखदेव के बयानों पर फणीन्द्रनाथ घोष अपनी सुसराल कलकत्ता में पकड़ा गया। उसने भी सुखदेव का ही मार्ग अपनाने में भलाई समझी। पुलिस को तो मानो सोने की चिड़िया या खुल सिमसिम हाथ लग गया। उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि फणीन्द्र अब आजाद को अवश्य पकड़वा देगा और फणीन्द्र ने उनके पकड़वाने में कोई कसर भी नहीं उठा रखी। वह पुलिस को भासी ले गया और उसको उस मकान तक पहुँचा दिया जहाँ आजाद ठहरे हुए थे। परन्तु उसके भाग्य में आजाद को पकड़वाने पर घोषित किया जाने वाला इनाम नहीं लिखा था। आजाद भासी में होते हुए भी उस समय उस मकान में नहीं थे और जब पुलिस से घिरे हुए मकान पर

आजाद जाने लगे तो किसी एक व्यक्ति ने उनको बता दिया कि पुलिस पर्णान्द्र दादा के साथ उम मकान में विद्यमान है ।

आजाद तो भगवानदास माहौर, शिव वर्मा और वैशम्पायन को लेकर ग्वालियर चले गये, परन्तु पुलिस ने आजाद के अनेक पहचानने वालों को गिरफ्तार कर लिया, कुछ को मुगधिर भी बना लिया और कुछ को भविष्य में आजाद को पहचानने के लिए नौकरिया भी दे दी । परन्तु आजाद को पकड़ने में वह कभी सफल न हुई ।

ग्वालियर चले तो गये परन्तु पैसे के अभाव से कई-कई दिन फाके करने पड़े । मकान का किराया नहीं दिया, हलवाई का हिसाब नहीं चुकाया । परन्तु वह हलवाई भी कोई एक विरला देशप्रेमी था । जब उसको इनके क्रांतिकारी होने का पता चल गया तो उसने केवल उनसे पैसे ही नहीं लिए बल्कि पुलिस को भी किसी प्रकार की जानकारी देने से इन्कार कर दिया । (वैशम्पायन)

ग्वालियर में ये सब गजानन पोद्दार के साथ ठहरे थे जो कालिज का विद्यार्थी था । वह देहली पड़्यन्त्र केस में मेरे साथ अभियुक्त था, परन्तु कुछ मसाला न मिलने पर अन्त में छोड़ दिया गया था । परन्तु अन्य साथी जिनका पता सुखदेव को मालूम था, पकड़ लिए गए । वे सभी लाहौर ले जाए गए । जयगोपाल ने आरम्भ में तो कोई भी वयान देने से इन्कार कर दिया था, परन्तु जब पुलिस ने उसके सामने उसके नेता सुखदेव का दिया हुआ वयान रखा तो उसने भी वयान दे दिए । इस प्रकार पंजाब पुलिस को जो साण्डर्स की हत्या का पता चलाने में अभी तक असमर्थ रही थी, अब उसके मारने वालों का तथा उसके पीछे पड़्यन्त्र का पूरा भेद मालूम हो गया और इसके साथ ही साण्डर्स हत्या, दिल्ली असेम्बली में बम्ब का फेंका जाना और अन्य घटनाओं का पूर्ण पारस्परिक सम्बन्ध भी मिल गया । दिल्ली से भगतसिंह तथा दत्त को, जिनको आजीवन कारावास हो चुका था, लाहौर ले जाया गया जहाँ उनको सेन्ट्रल जेल में रखा गया । अन्य अभियुक्तों को वोस्टेल जेल में रखा गया ।

पण्डित जी को, जिन्होंने अनेक कठिनाइयों से यह भानुमति का कुनवा जोड़ा था, इन अनेकों साथियों के पकड़े जाने से बहुत बड़ा आघात लगा । दल सुखदेव के पकड़े जाने से पहले भली प्रकार सुसंगठित हो गया था । बड़े-बड़े नगरों के सेक्टर सुचारु रूप से काम चला रहे थे । सदस्यों की गणना दिनोदिन बढ़ती जा रही थी । हथियार तथा दमों की सख्या भी बढ़ रही थी । पण्डित जी ने एक योजना बनाई थी जिसके अनुसार एक निश्चित दिन निश्चित समय

पर भारत के बड़े-बड़े नगरो मे एक ही साथ कोई ऐसा एक्शन करने वाले थे जिससे अंग्रेजो तथा भारतवासियो को दल की शक्ति तथा व्यापकता का ज्ञान हो जाए। परन्तु सुखदेव के भण्डा-फोड ने उस योजना पर पानी ही फेर दिया।

परन्तु पण्डित जी ने हार मानना तो जीवन मे सीखा ही नहीं था। उन्होंने फिर से, बचे-खुचे सदस्यो को इधर से उधर किया। उनके निवास स्थान तथा नगर भी बदले। ठहरने के स्थान भी एकदम बदल दिए गए। साथ ही अभियुक्तो के मुकदमे की सफाई का प्रबन्ध धनवन्तरी और भगवतीचरण को सौंपा। इस बीच वह कई बार लाहौर भी हो आए। यह ज्ञात होते हुए भी कि सुखदेव और जयगोपाल ने उनका पूरा हुलिया पुलिस को बता दिया था, वह निडर हो लाहौर के चक्कर लगाते रहे। अपने पकड़े जाने का उनको कतिपय भी भय नहीं था। वह तो सदैव पुलिस से लड़ने के लिए प्रस्तुत रहते थे। जेल मे भरा हुआ पिस्तौल और एक भरी हुई मेगजीन सदा ही उनके साथ रहती थी, जिसको समय आने पर निकाल कर प्रयोग करने मे क्षण भर की भी देरी नहीं होती। पण्डित जी लाहौर पड्यून केस के अभियुक्तो की सफाई का प्रबन्ध कर फिर से दल के रहे-सहे सदस्यो को बटोर कर दल के संगठन मे सलग्न हो गए, अब वह दिल्ली और पंजाब मे अधिक आने-जाने लगे। यू० पी० मे भी काम की गति बढ़ा दी गई। ग्वालियर मे वम बनाने का मसाला अधिक मात्रा मे तैयार होने लगा। देहली और पंजाब मे पुलिस की सरगर्मी देख आजाद ने अन्य प्रान्तो की ओर ध्यान दिया। यही से इस समय उन्होंने भगवानदास और सदाशिव को बम्बई की ओर भेजा जब वे दोनो लड़ते हुए भुसावल स्टेशन के गार्ड मे पकड़े गये। इसका वर्णन पहले ही आ चुका है। वे दोनो पूना मे राज-गुरु से मिलने जा रहे थे।

जब लाहौर के सम्बन्ध मे काफी धर-पकड़ हो चुकी थी तो आजाद ने फिर करवट ली। ग्वालियर छोड़ कानपुर आ पहुँचे जहाँ उन्होंने धीरभद्र तिवारी, सतगुरुदयाल अवस्थी, मन्नीताल पाण्डे, विश्वनाथ पाण्डे, हमीदखा, कैलाश द्विवेदी, रामचन्द्र जेल यात्री, राजेन्द्र निगम, नारायणदास, रामचन्द्र मुसद्दी, रामभरोसे और गुलजारीलाल से सम्पर्क बढ़ाये और नये सम्पर्कों मे डा जवाहरलाल रोहतगी, नारायणप्रसाद अरोड़ा, प्यारेलाल अग्रवाल, गंगासहाय चौधे, प्रिंसिपल सन्ना आदि भी थे।

इन सब सम्पर्कों मे लगभग सभी ने पण्डित जी का अन्त समय तक यथोचित साथ दिया, सहायता की। फिर भी रामचन्द्र और उनकी पत्नी तथा

श्री मुसद्दी या स्थान विशेष है। उनके घर को तो आज़ाद ने अपना ही नहीं अपने बितने ही साधियों का घर बना लिया था। एक ओर बाग़ेसी और फिर अधिक अवस्था भी अधिक अच्छी नहीं, फिर भी उस दम्पति ने दल की सेवा में कोई कसर उठा नहीं रखी।

उपर वीरभद्र का सम्पर्क उनके लिए घातक ही सिद्ध हुआ। इसका विवरण आगे तथा परिशिष्ट में मिलेगा।

लाहौर में पहला पड़्यन्त्र बेस चालू हो गया। भगतसिंह तथा दत्त तो दिल्ली असेम्बली बम बाण्ड में प्रख्यात हो चुके थे। लाहौर केस में उनको सम्मिलित करने से पण्डित जी, भगवतीचरण तथा धनवन्तरी को सफाई के प्रबन्ध करने में कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। जनता की ओर से कमेटी बनाई गई उसी ने लोगो से धन एकत्रित कर माने हुए वकीलो को सफाई के पक्ष में नियुक्त किया। य वकील यद्यपि ब्रिटिश सरकार के विरोधी नहीं थे परन्तु उनकी सहानुभूति देश की स्वाधीनता प्राप्त करने वाले लड़ाको के साथ थी। इस सहानुभूति का यह लाभ हुआ कि धनवन्तरी और भगवतीचरण को जेल में बन्द अभियुक्ता से पत्रों द्वारा विचार-परामर्श तथा पैगाम लाने-लेजाने की सुविधा मिल गई।

पण्डित जी कुछ ही महीनो में दल को फिर से एक बार संगठित करने में सफल हो गए और दल के सामने शीघ्र ही कोई एक्शन करने का प्रश्न आया। अन्तिम दल का काम जैसा कि स्पष्ट है छिपे तौर पर होता था। उसमें नवयुवक भावना से प्रेरित होकर आते थे। यह नवयुवक दृढ सकल्प के नहीं होते थे। आरम्भ में तो वे दल में आते थे या तो किसी प्रख्यात आन्तिकारी का दर्शन करने, रिवाल्वर या पिस्तौल को देखने। यह दल के नेता का कर्त्तव्य था कि शनै-शनै उनकी इस क्षणिक भावुकता को उनके स्वाधीनता की लड़ाई लड़ने के लिए दृढ सकल्प में बदल। इस अभिप्राय से नवयुवको को स्वाधीनता की लड़ाई पर लिखी हुई पुस्तकें पढाई जाती थी। उनको लेक्चर भी दिए जाते थे और शारीरिक एवं मानसिक बल प्राप्त करने पर विशेष ध्यान दिया जाता था। नेताओं को आदेश था कि वे प्रत्येक सदस्य के आचरण पर पूरा ध्यान रखें। पण्डित जी ने मुझे एक बार बताया था कि जिस समय दल के अनेक सदस्य आगरे में एक मकान में रहते थे और गनकाटन तथा पिकरिंक ऐसिड बनाते थे, एक दिन भगतसिंह तथा राजगुरु ने बातों-बातों में कुछ मज़ाक हुआ। पण्डित जी को पता चलन पर उन्होंने राजगुरु को डाट

डपट की और कहा कि यदि वह इस प्रकार के मजाक करेगा तो पण्डित जी उसको दल से बाहर निकाल देंगे। राजगुरु को बहुत दुख हुआ और प्रायश्चित्त में उसने अपना बाया हाथ गरम तवे पर रख दिया और उस समय तक नहीं उठाया जब तक पण्डित जी ने उसका हाथ पकड़ कर तवे से नहीं खींचा। इसी बात को भाई वैशम्पायन ने इस प्रकार बताया है - “एक दिन राजगुरु और एक अन्य साथी रोटी बना रहे थे। राजगुरु रोटी सेक रहे थे, उनके हाथ में चिमटा तथा सड़ासी थी, रोटिया सेकते-मेकते उन्होंने सड़ासी आग में रख दी और जब गरम हो गई तो उस गरम सड़ासी से छाती पर तीन बार दाग लिया। पास बैठे साथी कुछ कहे उसके पूर्व ही सारी क्रिया समाप्त हो चुकी... मेरे पूछने पर उन्होंने कहा कुछ नहीं, देख रहा था कि पुलिस ठोकर से विचलित तो नहीं हो जाऊंगा।

आजाद उस रात्रि जब बाहर से लौटे तो राजगुरु की हरकत सुनकर उनसे पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया। उत्तर दिया, यह देखने के लिए कि यदि पुलिस उन्हें दागे तो उससे कितनी तकलीफ होगी और उसे वह सहन कर सकेगा या नहीं।...”

नवयुवको के आचरण बनाने और उनको पूरा क्रान्तिकारी बनाने में समय की आवश्यकता थी। परन्तु यह भी अनुभव की बात है कि यदि कुछ समय तक कोई एक्शन नहीं किया जाए तो दल के कामों में शिथिलता आ जाती है और सदस्य इधर-उधर बहकने लगते हैं। यह भी देखा गया है कि कभी-कभी दल में कोई मुलभे हुए व्यक्ति आ जाते हैं जिनको दल के काम के साथ अपनी भावनाओं को पूरा करने का ध्यान भी होता है और वे दल के नेता का भी अपमान करने या उनकी आज्ञा की अवहेलना करने से नहीं क्लिप्त होते। ऐसे नवयुवको में से एक यशपाल भी था जो लगभग एक-डेढ़ वर्ष से लाहौर के दल में सम्मिलित था। वह समझदार था परन्तु उतावला अधिक। उसको अपनी जान की परवाह नहीं थी, परन्तु वह जिस बात को उचित समझता था, उसको दल के सदस्यों तथा नेता के विचारों के विरुद्ध होते हुए भी करना चाहता था और कर भी गुजरता था।

एक ओर दल जब लार्ड साइमन को मारने में असफल हो गया, दूसरी ओर भगतसिंह तथा दत्त दिल्ली में और लगभग सभी साथी लाहौर में पकड़ लिए गये तो यशपाल ने लार्ड इरविन, उस समय के भारत में वायसराय, को मारने की योजना बनाई। दल लार्ड इरविन के व्यक्तिगत विरुद्ध नहीं था।

परन्तु भारत में वह अंग्रेज शासकों का प्रतिनिधि था और उसको मारना अंग्रेजों की भारत में शासन नीति का विरोध प्रकट करना था। पण्डित जी को भी योजना पसन्द आई। उस समय तक बम के खोल बनाने की फैक्टरी बन्द हो चुकी थी। केवल एक ही खोल था जिसका बम बना लिया गया। परन्तु एक खोल पर्याप्त नहीं था, पण्डित जी ने एक पीतल के लोहे में दूसरा बम बनाया। इन्द्रपाल को यशपाल ने दिल्ली से बारह मील दूर बदरपुर भेजा जिसने वे बम रेलवे लाइन के चार इंच नीचे दबा कर रख दिए। वह पन्द्रह दिन तक बायसराय के लौटने की राह देखता रहा। यशपाल भी उससे समय-समय पर मिलता रहा, परन्तु अवसर नहीं मिला। जब वहां से बम हटाए गए तो पीतल के लोहे वाला बम नहीं था शायद उसको कोई ग्रामीण उठा कर ले गया था। यह सब अक्टूबर १९२६ में हुआ।

यशपाल हताश नहीं हुआ। उसने तो निश्चय किया हुआ था कि लार्ड इरविन को मारना है। उसने भागराम की सहायता से पुराने किले, दिल्ली के पीछे से लगभग दो सौ गज दूर से गुजरती हुई रेलवे लाइन तक बिजली का तार डाला। लाइन के बीचोबीच एक बम थोड़ी-सी पृथ्वी खोद कर दबा दिया और उस बम के छोड़ने वाल डेटोनेटर को बिजली के तार से पुराने किले में रखी हुई एक वैंट्री बक्स से जोड़ दिया जिससे बटन दबाते ही बम फट जाए।

२३ दिसम्बर की प्रातः लार्ड इरविन इसी लाइन पर बाहर से दिल्ली लौट रहा था। वह सध्या समय महात्मा गांधी से मिलने वाला था।

मैं अपने सम्बन्ध में यह तो बता चुका हूँ कि जब मैं रामस्वरूप के घाट पर कुदसिया बाग के समीप जमना पर रह कर अपनी एम० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहा था, उस समय काशीराम द्वारा मेरी भेंट अनेक श्रातिवारियों से हो गई थी। कुछ ही दिनों बाद कैलाशपति दिल्ली लौट आया था और काशी-राम ने मुझे बताया कि वह (कैलाशपति) दिल्ली के श्रातिवारी दल का समूहन-वर्त्ता नियुक्त हो गया है। अक्टूबर १९२६ में मैं हिन्दू बालिज में लेाचरर नियुक्त हो गया। माघ ही होस्टलो का गुणरिण्टेण्डेण्ट भी। तीन होस्टलो में मैं एक उम समय ४-रामचन्द्र लेन, मँटबाप हाऊस रोड पर स्थित था और मैं उसी होस्टल में एक कमरे में रहन लगा। उस कमरे के साथ दो छोटे-छोटे कमरे थे जिनमें मैं एक बाय भूम का काम देना था। मैं अविवाहित था, अब भी हूँ, इग्निए मैंने अपने पाने का पृथक् प्रबन्ध नहीं किया था। होस्टल में चार भेंट

थे, उनमें से एक में मैं भी शामिल हो गया था। कालेज की ओर से मुझे एक नौकर भी मिला हुआ था।

उस होस्टल में मेरे जाते ही कैलाशपति भी, जिसका दल का नाम शीतलप्रसाद था, मेरे पास ही रहने लगा। वह प्रायः खाना भी मेरे साथ ही खाता था। मेरे अपने ऊपर खाना आदि मिलाकर केवल २५-३० रुपये मासिक व्यय होता था और शेष वेतन मैं कैलाशपति को दल के लिए दे देता था। मैं कालेज साइकिल पर आता-जाता था और एक ही समय, प्रातः भोजन करता था।

दिसम्बर १९२६ का महीना था। लाहौर पड़्यन्न कैसे चल रहा था। भगतसिंह और पण्डित चन्द्रशेखर के कारनामों का वर्णन उस समय के समाचारपत्रों में मोटे-मोटे शब्दों में उल्लेख होता था। लोगों का ध्यान आन्तिकाशी दल की ओर प्रशसायुक्त कौतूहल से खिंच रहा था। यह प्रायः सुनने में आता था कि "यदि वे लोग पण्डित चन्द्रशेखर के दर्शन कर सकें तो उनको जो वह मांगेंगे, दे देंगे।" आदि।

लार्ड इरविन की ट्रेन पर दम

२२ दिसम्बर १९२६ को मेरे कमरे में दल के चार सदस्यों की सभा हुई, पण्डित जी ने वाद में बताया था कि उसमें यशपाल, भगवतीचरण, वीरभद्र तिवारी और पण्डित जी थे। यह सभा यशपाल के कहने पर बुलाई गई थी और उसमें प्रश्न था आगामी प्रातः काल लार्ड इरविन की गाड़ी पर दम चलाना, जिसका कि प्रबन्ध हो ही चुका था। सभा लगभग चार घण्टे चली थी। पण्डित जी के कथनानुसार वह और वीरभद्र तिवारी उस एक्शन के विरोध में थे। कारण था शायद इरविन को उसी शाम महात्मा गांधी से भेंट करनी थी। भगवतीचरण की कोई राय न थी, परन्तु वह भी चाहते थे कि एक्शन को स्थगित कर दिया जाए तो अच्छा होगा। परन्तु यशपाल तो दृढ़ संकल्प करके आया था कि वह तो यह एक्शन करेगा ही, दल साथ दे या न दे। सभा किसी परिणाम पर अभी नहीं पहुँची थी कि यशपाल उठ कर चला गया। उसके पश्चात् भगवतीचरण और वीरभद्र भी चले गए।

२२ दिसम्बर की रात्रि का पण्डित जी मेरे साथ ही सोए। कैलाशपति कहीं दूसरी जगह चला गया। २३ दिसम्बर को पण्डित जी प्रातः काल उठे और मुह हाथ धो मेरी साइकिल ले नगर की ओर चले गए। मुझे पहले दिन वाली सभा का कुछ हाल मालूम नहीं था। लगभग एक घण्टे में लौटे और बोले, तुना,

लाइंड इरविन साहब की ट्रेन पर बम चला दिया गया। मैं मुस्करा दिया, परन्तु वह गम्भीर थे। फिर बोले, “साले सोहन से मना लिया था परन्तु वह माना ही नहीं (सोहन यशपाल का दल का नाम था)। देखो अब क्या होता है।” वह कमरे के बाहर ही घूमते रहे। थोड़ी देर में एक तोप के छूटने की ध्वनि सुनाई दी। उन्होंने ठण्डी द्वास ली और बोले, “अच्छा ही हुआ, लाइंड इरविन मारा नहीं गया।”

२२-२३ दिसम्बर की रात अतीव ठण्डी रात थी। कोहरा चारों ओर छाया हुआ था। पांच गज पर रखी हुई वस्तु भी दिखाई नहीं पड़ती थी। पण्डित जी लगभग दो घण्टे पश्चात् फिर साइकिल पर नगर की ओर गए और लगभग दो ही घण्टे बाद लौटे। उन्होंने मुझे बताया कि बम पुराने किले के सामने रेलवे लाइन पर उस समय फटा जब वायसराय की गाडी लगभग ५० मील के वेग से दिल्ली की ओर आ रही थी। गाडी के एक डिब्बे का कुछ भाग उड़ गया। परन्तु वायसराय सही सलामत दिल्ली पहुँच गया।

मैं उसी सन्ध्या लाहौर में कांग्रेस सेशन में शामिल होने के लिए चला गया और वहाँ से चार जनवरी को लौटा। पण्डित जी मेरे कमरे में ही रहते रहे। ४ जनवरी को यशपाल भी मेरे कमरे में आया हुआ था। पण्डित जी ने उससे परिचय कराया और फिर यशपाल ने उस एक्शन का और उसके पश्चात् अपने साफ निकल जाने का ध्यौरा इस प्रकार दिया

वह (यशपाल) भागराम के साथ एक मोटर साइकिल पर, जो दल ने एक्शनो के लिए खरीदी थी, रात ११ बजे पुराने किले पर पहुँच गया था। २ बजे तक दोनों ने बम को बैट्री से जोड़ दिया था। उस रात ठण्ड बहुत थी, कोहरा भी पड़ रहा था। वह एक फौजी कप्तान की वर्दी पहने हुए था। रात भर सर्दी में बैठा रहा। प्रातः लगभग साढ़े ६ बजे दूर से गाडी के आने की ध्वनि आई। वह सतर्क हो गया। पहले पाइलट इजिन लाइन पर से गुजरा। कुछ देर पश्चात् गाडी आई जो कोहरे के कारण दिखाई नहीं दे रही थी। उसने अनुमान से दो डिब्बों को गुजर जाने दिया और फिर बैट्री का बटन दबा दिया। एक ही क्षण में बम के फटने की गूँज आई परन्तु उसने देखा कि गाडी पटरी से उतरती नहीं। वह उसी वेग के साथ नई दिल्ली की ओर चली गई। उसने तार आदि का सामान वही छोड़ मोटर साइकिल को चलाना चाहा, परन्तु उसका इजिन सर्दी से जाम हो गया था। वह स्टार्ट नहीं हुई। उसने भागराम की सहायता से मोटर साइकिल को हाथों से धकेल कर दिल्ली नगर

की ओर चलना शुरू किया। अभी अवेरा ही था और कोई व्यक्ति वहाँ आ-जा नहीं रहा था। जब वह दोनों मोटर साइकिल को धकेलते हुए, दिल्ली दरवाजे के समीप जेल के सामने पहुँचे तो उस समय पुलिस का एक दस्ता पुराने किले की ओर जाता मिला। उस दस्ते के आफिसर ने यशपाल को मिलिटरी का आफिसर समझ कर सलाम दिया। यशपाल ने उसको बताया कि वह उसी ओर जा रहा था कि उसकी मोटर साइकिल फेल हो गई। पुलिस दस्ता पुराने किले की ओर चला गया और यशपाल दरयागज में आकर मोटर साइकिल एक मर-ममत करने वाली दुकान पर छोड़ कर सीधा रेलवे स्टेशन चला गया। फर्स्ट क्लास का गाजियाबाद का टिकट ले पहले उस ओर जाने वाली गाडी में बैठ गया। वहाँ भगवतीचरण उसके साथ हो लिया और दोनों कलकत्ता चले गए। जनवरी में वह फिर दिल्ली लौटे और मेरे कमरे में आ गये। पुलिस के बहुत प्रयत्न करने पर भी लाड इरविन की ट्रेन पर बम फेंकने वालों का कोई सुराग नहीं मिला।

यशपाल जब पण्डित जी से मेरे कमरे में मिला तो पण्डित जी उस पर बहुत क्रोधित हुए कि उसने दल की आज्ञा के विरुद्ध एक्शन क्यो किया। परन्तु जब यशपाल ने अपना पिस्तौल उनके सामने रख उनसे क्षमा मागी तो उन्होंने आसू भरी आँखों से उसे अपने गले लगा लिया।

मोटर साइकिल को दुकान से लाया गया। उसे मेरे होस्टल में तोड़ा गया। छोटे-छोटे टुकड़े तो यमुना नदी में फेंक दिए गए। बड़े-बड़े भाग मैंने अपने एक परिचित साइकिल डीलर के पास लाल किले की दुकान पर बेचने के लिए रखवा दिए। पुलिस ने कैलाशपति की गवाही पर उन पुरजों को वहाँ से प्राप्त किया और उस मेरे परिचित डीलर ने पुलिस के दबाव से बहुत कुछ झूठी गवाही मेरे विरुद्ध अदालत में दी।

महात्मा गांधी और क्रान्ति दल

उन्ही दिनों वायसराय की ट्रेन घटना के पश्चात् महात्मा गांधी ने अपने साप्ताहिक पत्र "यंग इण्डिया" में एक लेख बम पार्टी (Cult of the Bomb) पर लिखा था जिसमें उन्होंने क्रान्तिकारियों को बहुत बुद्ध भला-बुरा कहा था और उनका बुज्जदिल, गुमराह आदि के नाम से वर्णन किया था। पण्डित जी को उस लेख से बहुत दुख पहुँचा था। वह गांधी जी के अहिंसा मार्ग से स्वाधीनता प्राप्त होने में विश्वास नहीं करते थे। परन्तु वह गांधी जी की ओर सद्भाव से देखते थे। वह प्रायः दल के सदस्यों से कहा करते थे कि दल के एक्शन कांग्रेस के कार्य के पूरक होंगे, विरुद्ध नहीं होंगे। आखिर दोनों ही स्वाधीनता को लड़ाई लड़ रहे हैं। दोनों अपने-अपने मार्गों द्वारा एक ही ध्येय की ओर कूच कर रहे हैं। भेद केवल इतना है कि एक ओर कांग्रेस के लीडर छ महीने के लिए जेल जाते हैं जहाँ जेल अधिकारी उनसे साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। जेल में उनको कोई तकलीफ नहीं होती। बाहर आने पर उनको सभी से आदर-सम्मान मिलता है। बाहर या अन्दर उनको पैसे या खाने-पीने की श्रुति नहीं होती। छ महीने आराम के साथ जेल काट कर वे लोग लीडर बनकर निकलते हैं। दूसरी ओर क्रान्तिकारियों का जीवन असुविधाओं और मुश्किलों से भरा है। खाने-पीने की कमी, रुपया पैसा पास नहीं, पहनने को मैले-कुचले कपड़े और सोने को जहाँ भी सुरक्षित स्थान मिल जाए, जीवन सदैव हथेली पर रखा हुआ, कभी भी गोली से मार दिये जाने की सम्भावना, यदि जीवित पकड़े जाए तो आजीवन काल-कोठरी में पड़े सड़ना, प्रत्येक प्रकार की

असुविधाएँ और इन सब बातों के होते हुए भी सराहने की एक बात नहीं। मिन, सम्बन्धी सभी का त्याग, कई-कई दिन भूखे रहना, जाड़े गर्मी में ठण्डे कपड़े पहनना, इन सब बातों के होते हुए वह केवल देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध है। फिर भी उनको गांधी बुज्जदिल कहे और उन्हें भला-बुरा बहे तो इससे अधिक नासमझदारी और अन्याय क्या हो सकता है। महात्मा गांधी साधन को बुरा कह सकते थे, साधकों को नहीं। उन्होंने भगवतीचरण से गांधी जी के लेख का उत्तर लिखने के लिए कहा।

यहाँ कुछ शब्द महात्मा गांधी के विचारों के सम्बन्ध में अनावश्यक नहीं होंगे।

वैसे तो कांग्रेस का जन्म १८८५ में हो चुका था, परन्तु १९१८ तक की कांग्रेस की गतिविधि तथा कार्य कुछ और ही रूप रखते थे। यह सत्य है कि बालगंगाधर तिलक भी उस समय कांग्रेस के नेताओं में से ही थे। परन्तु वह तो उग्र नीति का प्रचार करते थे उन्होंने ही “स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है” का नारा देश को दिया था और तिलक उस स्वराज्य को किसी भी प्रकार शीघ्र से शीघ्र प्राप्त करना चाहते थे। परन्तु उस समय की कांग्रेस में तिलक की आवाज नववारखाने में तूती की ध्वनि के समान थी, जिसको अन्य कांग्रेसी नेता तथा जनता सुनने के लिए तैयार ही नहीं थी।

ठीक इसी समय महात्मा गांधी आगे आये। उनको पिछले कई वर्षों के तजुबों से यह भली भाँति ज्ञात तथा आभास हो गया था कि देश की स्वतन्त्रता भांगने या प्रस्ताव पास करने से नहीं मिल सकती।

उस समय तक इस ससार के पराधीन देशों की स्वाधीनता के युद्ध का एक ही मार्ग सामने आया था, वह था हिंसा का प्रयोग। महात्मा गांधी ने उस मार्ग को न अपनाकर अहिंसा का मार्ग देश के सन्मुख रखा। इस अहिंसा के मार्ग को उन्होंने कितने ही रूपों में देश के सन्मुख प्रस्तुत किया। परन्तु उनका १९२१ का पहला प्रयत्न चोरी-चोरा में लोगों के हिंसा मार्ग के अपनाने से असफल हो गया और महात्मा जी ने उस प्रयत्न को ‘हिमालय पर्वत के समान भून’ कहकर स्फुटित कर दिया।

उसके पदचात ही ब्रिटिश सरकार हिन्दू और मुसलमानों में फूट डलवाने में मफल हो गई और पाच-छ वर्षों तक इन भगडों ने देश के कोने-कोने को जड़ में हिला दिया। परन्तु महात्मा गांधी ने हिम्मत नहीं हारी। उनका प्रयत्न जेलों, भूप हड्डनालों, चरखा-सम्बन्धों द्वारा चलता ही रहा। अखिर कांग्रेस में भी

दो दल हो गये थे। एक महात्मा गांधी के साथ रहा जो असहयोग में विश्वास करता था। दूसरा वह दल जो असेम्बली द्वारा अपनी मांगों को साम्राज्यवादियों के सामने रखना चाहता था। इस दूसरे दल के नेता थे पण्डित मोतीलाल नेहरू।

कहते हैं सत्य कभी कभी बड़ा कड़वा होता है। इस कथन की सत्यता महात्मा गांधी को दूसरे विश्वयुद्ध के आरम्भ में ही ज्ञात हो गई। जिन उच्चकोटि के नेताओं को वह समझते थे कि उनका अहिंसा में पूर्ण तथा अटूट विश्वास है उन्होंने ब्रिटिश सरकार को यह प्रस्ताव दिया कि यदि वह भारत को युद्ध के अन्त में स्वराज्य देने का वादा करे तो वे लोग उसके साथ युद्ध में सहयोग देंगे। अभिप्राय यह कि उनका अहिंसा में विश्वास केवल एक नीति भर था, पूर्ण नहीं था। महात्मा गांधी ने इस प्रस्ताव का पूर्णरूप से विरोध किया, परन्तु यह उनकी अकेली ही ध्वनि थी और महात्मा जी को कांग्रेस की चार-आने वाली सदस्यता से भी त्याग-पत्र देना पड़ा।

परन्तु क्रान्तिकारी तो अधिक सत्यवादी थे। वे तो डके की चोट कहते थे कि वे हिंसा के मार्ग में विश्वास करते हैं। इसी विश्वास को उन्होंने महात्मा गांधी के लेख *Cult of the Bomb* के उत्तर *Philosophy of the Bomb* में दर्शाया।

बम के पीछे फलरूपा

लाहौर में वार्षिक कांग्रेस सेशन में २६ जनवरी १९३० के दिन समस्त भारत में स्वतन्त्रता-दिवस मनाने की घोषणा की थी। दल ने उसी दिन महात्मा गांधी के बम पार्टी का (*Cult of the Bomb*) उत्तर बम का दर्शन (*Philosophy of the Bomb*) के द्वारा देने का निश्चय किया।

२६ जनवरी को भारत के प्रमुख नगरों में प्रातःकाल लोगों के घरों में, मालेजों के होस्टलों में, अदालतों में, व्यापार-घरों में एक पर्चा पाया गया, जिसका शीर्षक था *Philosophy of the Bomb*। उस पर्चे में महात्मा गांधी के लेख का पूर्णतया उत्तर दिया गया था कि गांधी जी अपने अहिंसा मार्ग की गगनगति करते हैं, परन्तु उनका क्रान्तिकारिता के प्रति दोष निवारण अत्यन्त विरल है। जो युवक अपने कामों, अपने बलिदानों को बिना प्रशंसा की आशा से करते हैं और हगते-हगते फाँसी पर भी चढ़ जाते हैं, या गोली में उड़ा दिये जाते हैं, वे उन लोगों से कहीं अधिक सराहनीय हैं जो यह समझते हैं कि

छ महीने के लिए जेल जाने से या नमक का कानून तोड़ने से स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे। उस पक्ष का आशय इस प्रकार था —

“क्रान्तिकारी दल पर महात्मा गांधी ने उनके प्रति कायरता आदि का जो लाछन लगाया है, दल ने इस ‘वम के दर्शन’ का पर्चा बांटकर अपना विचार-विनिमय जनता के सामने रखा है और उसी के ऊपर छोड़ा है कि वही इस बात का निर्णय करे कि क्रान्तिकारी कायर है या वीर।

“क्रान्तिकारी हिंसा हिंसा की खातिर नहीं करते। वे तो अपने विश्वास के अनुसार न्याय चाहते हैं और अपने उद्देश्य की पूर्ति में अपना सब कुछ बलिदान कर देते हैं। वे आत्मिक तथा शारीरिक बल में भेद नहीं करते। दोनों का ही अपने-अपने स्थान पर प्रयोग करते हैं। क्रान्ति का अभिप्राय समझाते हुए पक्ष में लिखा था कि इसका लक्ष्य एक नई न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पूँजीवाद को समाप्त कर श्रेणीहीन समाज की स्थापना और देशी तथा विदेशी शोषण से जनता मुक्त हो, आत्मनिर्णय द्वारा जीवन व्यतीत करने का अवसर मिले और शासन मजदूर श्रमिकों का हो।

“भारत का युवक सामाजिक अन्याय और शोषण के विरुद्ध विद्रोह पर तुल्य हुआ है। यही विद्रोह आतंकवाद का रूप ले रहा है, जो क्रान्ति का आरम्भ चिह्न है। आतंकवाद अन्यायी शोषक के हृदय को दहलाता है और पीड़ित तथा दलित जनता को प्रतिकार द्वारा आत्मविश्वास, उत्साह और साहस देता है। फिर भी दल का लक्ष्य आतंकवाद नहीं है। आतंक का मार्ग क्रान्ति में परिणित होगा और क्रान्ति सर्वसाधारण जनता की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता में परिणित होगी। क्रान्तिकारी क्रान्ति के मार्ग में विश्वास करते हैं। उनके सामने सत्कार के दूसरे उदाहरण मौजूद हैं। कांग्रेस वजाय ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लड़ने के क्रान्तिकारी दल के पीछे पड़ रही है। महात्मा गांधी भारत को क्रूरता के माथ दलने वाला को अपना मित्र धनते हैं, देश पर अपना जीवन निष्ठावर करने वालों को कायर और उनके एकसत्ताओं को जघन्य कहते हैं। जनता क्रान्तिकारियों के साथ ही है, यह तो साहस का प्रेम ने स्पष्ट कर दिया। गांधीजी का यह धर्म है कि जनता उनके साथ है। जनता तो उनके साथ होती है जो उससे प्रेम करता है और उससे घृणा करती है जो उसे दुष्ट देता है। इस बात में भाग्य की जाना दूसरे देशों की जनता से भिन्न नहीं है। आखिर महात्मा गांधी ने कितने हायर, ओछापर, रीढ़िंग या इराबिन को प्रेम में अपनी ओर कर लिया है और फिर ब्रिटिश साम्राज्य तो बहुत दूर है।

“कांग्रेस का कर्तव्य भारत को स्वाधीन कराना है। अंग्रेजों के आगे गिड़गिड़ा कर उनसे समझौता करना नहीं। जिस पूर्ण स्वतन्त्रता को क्रान्ति-कारी पिछले २५ वर्षों से अपना लक्ष्य बनाते आए हैं, आज कांग्रेस ने भी उसे अपना लक्ष्य बना लिया है। क्रान्तिकारी समझौता नहीं चाहते, वे तो व्यवस्था बदलना चाहते हैं। परन्तु कांग्रेस की होम रूल, स्वायत्त शासन, उत्तरदायी स्वायत्त शासन, पूर्ण उत्तरदायी शासन और औपनिवेशिक स्वराज्य की मांगों में दासता प्रतीत होती है। क्रान्तिकारी केवल पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं। कांग्रेस ने जनता में चेतना अवश्य पैदा की, परन्तु उसको अपने समझौते की नीति से कुचल डाला। जनता में चेतनता तो केवल संघर्ष से आती है, समझौते से नहीं। समझौता ही तो कायरता का मूल है और वह देश के साथ विश्वासघात है। गांधीजी तो चाहते हैं कि जनता क्रान्तिकारियों के साथ कोई सम्पर्क न रखे, सहायता न दे। गांधीजी ने क्रान्तिकारियों की भावना को समझने का प्रयत्न नहीं किया। क्रान्तिकारी अपने जीवन की बाजी लगाकर आगे बढ़ते हैं उन्हें जय-जयकार और फूलों की आवश्यकता नहीं है। वे अपने कर्तव्य पालन में निन्दा अथवा कठिनाइयों की परवाह नहीं करते। उन्हें अपने कार्यक्रम की सच्चाई पर पूर्ण विश्वास है। वे बलिदान और सफलता की कसीटी पर पूरे उतरते हैं। यह सम्भव है कि जनता उनकी सच्चाई को न पहचाने।

“हम अपने देश के नौजवानों, मजदूरों, किसानों और बुद्धिमानों से अनुरोध करते हैं कि वे देश की आजादी के झण्डे के नीचे एकत्रित होकर हमारा साथ दें। देश में ऐसी व्यवस्था लाने का प्रयत्न करें जिसमें राजनैतिक और सामाजिक दासता और आर्थिक शोषण असम्भव हो जाए।

“अहिंसा के नाम पर समझौतावादी नीति को ठोकर मार दीजिए। हमारी सस्मृति और गौरव का कोई अर्थ उस समय तक नहीं होगा जब तक अहिंसा के नाम पर विदेशी दासता के सन्मुख सिर झुकाए रहेंगे।”

क्रान्ति चिरजीवी हो।’

यह पत्र पण्डित जी के कहने पर भगवतीचरण ने लिखा था और पण्डित जी ने कानपुर में छपवाया था। एक पत्र की काफी गांधीजी को भी भेजी गई थी। उन्होंने इसकी ‘यंग इण्डिया’ में प्रशंसा की और माना कि उन्होंने अपने पहले लेख में क्रान्तिकारियों के प्रति न्याय नहीं किया था। अपने दूसरे लेख में हिंसा मार्ग को बुरा बताते हुए भी क्रान्तिकारियों की वीरता की

तारीफ की और अन्त में लिखा कि उनको पूर्ण विश्वास है (था) कि वह तीन वर्षों में अहिंसा मार्ग से भारत को स्वाधीनता दिला देंगे । यदि वह ऐसा न कर सके तो फिर प्रान्तिकारी अपने मार्ग को फिर से अपनाकर अपना कार्य आरम्भ कर ले ।

महात्मा गांधी के उस लेख में देशवासियों के दिलों में प्रान्तिचारियों के प्रति कुछ श्रद्धा बढ़ी, परन्तु कोई वास्तविक परिणाम नहीं निकला । रुपये-पैसे की कमी तो बनी ही रही । हा, युवक अवश्य अधिक संख्या में इससे सहानुभूति दिखाने लगे और दल के सदस्यों को अपनी सत्या बहाने तथा सहायक भी बढ़ाने में कुछ सफलता अवश्य मिली ।

पंडित जी और चटगांव आरमरी-रेड

सगभग भाग्य के मनी बड़े-बड़े मगरों में एक गाय 'बम का दर्शन' पर्व बटने में गम्हार अवस्था पोखरी हो गई। गम्हारी क्षणिकारी गो गम्हारे बड़े थे कि माली गम्हारे अन्तिम गो पर्व पर उनके दन को जट में उगाड़ दिया है और उमारे दान-गो दो बार गम्हारे कीर्ति हो पर्व लिए जाएंगे। साठे द्रविण की दूध पर पर्व जाने वाले बम ने मांगो उमारे गोने में पौसा दिया था। दूध पर्व के बृहद् विसर्जन ने सा उमारे आंग्रे गोने दी। गम्हारे भारत में पुलिस और सी० आई० डी० पोखरी कर दी गई। पण्डित जी के जिन्दा या मुरा पर्वने के लिए सा अनेको उनसे पहचानने वाले पुलिस की नौकरी में ले लिए गए थे। उनका (६०), (६०) गम्हारे मांगिव पमार पर रखा गया था और उनका द्रविण-उपर आने-जाने का गम्हारे भी गम्हारे ही देती थी। पुलिस और सी० आई० डी० आफिगरो को भी पर्वानि सस्या में रखा ऐसे ही काम में गम्हारे करने के लिए दिया गया। कुछ लोगों ने कभी-कभी पण्डित जी को पहचाना भी परन्तु वे उनको पकड़वा नहीं सके। एक बार पण्डित जी, भगवतीचरण के साथ बानपुर में मेस्टन रोड में जा रहे थे कि उनसे पहचानने वाले पुलिस की सविस में एक व्यक्ति ने उनका पीछा किया। वे दोनों भूलगज की ओर जाते हुए एक गम्हारे में मुड़ गए और उमारे मोड़ पर जाकर ठहर गए। जब वह मुखदिर उस मोड़ पर पहुँचा तो पण्डित जी ने उसकी छाती पर अपना पिस्तौल रखा और बोले, क्या तू अपनी मौत चाहता है। वह सक्पका गया और उमारी घिघी बघ गई। उसने हाथ जोड़े। पण्डित जी ने उसे उरटा लोट

जाने के लिए कहा और साथ ही यह भी कह दिया कि उसने पलट कर देखा तो पण्डित जी उसको गोली मार देगे । उसके पश्चात् जब कभी उसने पण्डित जी को कही भी देखा, अपना मुख फेर लिया ।

इस प्रकार सरकार के सभी यत्न पण्डित जी या दल के अन्य सदस्यों को पकड़ने में असफल रहे । सरकार को अधिक दुख और मलाल इस बात का था कि वे लार्ड इरविन की ट्रेन पर बम चलाने वालों का पता भी न लगा सकी थी ।

पण्डित जी इन दिनों मेरे साथ होस्टल में ठहर कर मेरी दवा-दारू कर रहे थे (मुझे टायफायड हो गया था) । वह तीन महीनों तक बाहर नहीं गए । उनसे मिलने यू० पी० से वैशम्पायन, पंजाब से भगवतीचरण, यशपाल आदि आते रहते थे ।

उन दिनों हमें विश्वस्त सूत्रों से पता चला कि ब्रिटिश सरकार ने चार स्काटलैण्ड के उच्च आफिसर वायसराय की ट्रेन पर बम चलाने वालों का सुराग लगाने के लिए भेजे हैं । वे चारों आफिसर मेरे होस्टल के समीप के एक बगले में आकर ठहरे । पण्डित जी ने उनकी निगरानी आरम्भ कर दी । इस कार्य में हमें अपने होस्टल के घोड़ी से बहुत सहायता मिली जो उनके कपड़े भी धोता था । पण्डित जी ने एक दिन विचार किया कि उन चारों को गोली से उड़ा दिया जाए । जब भगवतीचरण से अनुमति ली तो उन्होंने मना कर दिया । कारण इस एक्शन से पुलिस की सरगर्मी, विशेषकर दिल्ली में, बढ़ जाती और उम्र समय दिल्ली और विशेषतः होस्टल में मेरा कमरा दल का केन्द्र बन गया था, जिसको दल का कोई भी सदस्य छाड़ने के लिए तैयार नहीं था । पण्डित जी ने इस एक्शन का ध्यान छोड़ दिया ।

चटगांव आरमरी-रेड

एक ऐसा एक्शन करो जिससे क्रान्तिकारियों का सिर सारे भारत में ऊंचा उठ जाए। मेरा आशीर्वाद तुम लोगों के साथ है।" वैशम्पायन के अनुसार चटगाव के प्रद्युम्न गंगोली आजाद से कानपुर में मिले थे और आजाद ने उनको दो रिवाल्वर भी दिये थे।

चूँकि यह मुलाकात मेरे होस्टल में हुई थी और एक नहीं दो बगाली सदस्यों ने उनसे वार्तालाप किया था और उसके पश्चात् आजाद के चटगाव एक्शन के पश्चात् हर्ष के उद्गार मेरे ही सम्मुख प्रकट हुए थे, मैं समझता हूँ कि वैशम्पायन की सूचना का स्तर सही न था। हाँ, यह सम्भव हो सकता है कि वीरभद्र तिवारी ने आजाद का उन दोनों वीरों से मिलने का प्रवन्ध किया हो। मुझे इस सम्बन्ध में कोई भी ज्ञान नहीं है और न ही आजाद ने मुझे ऐसा कभी बताया।

अप्रैल में बगाल के ६४ युवक और युवतियों ने, जिनमें ११ वर्षीय बालक भी सम्मिलित थे, बड़ी वीरता के साथ चटगाव आरमरी (हथियारखाने) पर धावा बोल दिया और कुछ सैनिकों का मारकर हथियार अपने आधीन कर चले गये। वे अधिक दिन स्वाधीन न रह सके। सरकार को इस एक्शन से बहुत बड़ा धक्का लगा। वह उनके पीछे हाथ धोकर पड़ गई और उनके मारने में वामुयानों की सहायता भी ली।

पण्डित जी को जब चटगाव के एक्शन की सूचना मिली तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुए। मुझसे बोले, "जैसा मैंने उनसे कहा था उन्होंने कर दिखाया। काश, हम समस्त भारत में ऐसा ही एक्शन कर पाते तो अंग्रेजों की जड़ें हिल जाती। खैर, चटगाव वालों ने क्रान्तिकारियों के सिर सदैव के लिए ऊंचे कर दिए हैं।"

भगवतीचरण की मृत्यु

टायफायड रोग के कारण मेरा स्वास्थ्य दिनोदिन बिगड़ता ही चला गया और मैं २० मार्च १९३० को होस्टल छोड़ अपने बहिन-बहनोई के साथ रहने नगर में आ गया। पण्डित जी उसी होस्टल में भवानीसिंह के, जो दल का सदस्य था, साथ रहने लगे। वह प्रत्येक दिन मुझे देखने आते थे। एक दिन तो उन्होंने मेरी बहिन से कहकर अरहर की दाल और चावल बनवाया और अपनी पेट भर 'दावत' की। भगवतीचरण, यशपाल और धनवन्तरी भी लाहौर में आते रहते थे, और यू० पी० से वैशम्पायन। इन्हीं दिनों पण्डित जी ने रामचन्द्र शर्मा के नलगढा, जिला बृलन्दशहर के फार्म में पिस्टल तथा राइफल शूटिंग-प्रैक्टिस का प्रबन्ध किया और वहाँ यशपाल, लेखराज कैलाशपति, भवानीसिंह और वैशम्पायन को ले जाकर उनको शूटिंग का अभ्यास कराया। यह रामचन्द्र शर्मा कैलाशपति के मुलतानी गवाह बनने पर फरार हो गये थे और कभी पुलिस के हाथों नहीं पड़े। यही नहीं, फरार अवस्था में जापान जाकर सुभाष बाबू के भारत से बाहर निकल जाने का प्रबन्ध भी बड़ी सफलतापूर्वक कर आए थे।

भगवतीचरण, यशपाल तथा धनवन्तरी की सहायता से पण्डित जी ने भगतसिंह तथा दत्त को लाहौर जेल से छुड़ाने की योजना बनाई। यह तो मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि लाहौर पड़्यन्त ब्रेस में भगतसिंह तथा दत्त तो लाहौर सेण्ट्रल जेल में रखे जाते थे और अन्य अभियुक्त वास्टेल जेल में। हर रविवार को भगतसिंह तथा दत्त सेण्ट्रल जेल से वास्टेल जेल लाए जाते थे जिससे वे दोनों अन्य अभियुक्तों से मिलकर अपने बचाव का प्रबन्ध कर सकें।

पण्डित जी की योजनानुसार भगतसिंह तथा दत्त को उस समय एक्शन कर बचाना था जब वे सेण्ट्रल से बोस्टल जेल ले जाए जाते थे ।

इस एक्शन के लिए घनवन्तरी और यशपाल की सहायता से बहावलपुर रोड पर एक बगले का आधा भाग किराये पर लिया गया । दूसरे भाग में एक दम्पति रहता था । किसी को कोई सन्देह उत्पन्न न हो जाए, इसलिए इस कोठी में पण्डित जी, मुशीला दीदो, भाभी और यशपाल रहने लगे । मदनगोपाल (अजमेर वाला) मास्टर छैलबिहारी (दिल्ली वाला) को बगले में नौकर बना कर रखा गया । टहलसिंह मोटर ड्राइवर के रूप में था । इनके अतिरिक्त जो अन्य सदस्य बगले में रहते थे उनमें यशपाल, घनवन्तरी, वैशम्पायन और मुखदेव राज थे । भगवतीचरण प्रत्येक दिन बगले पर आते थे और सलाह-मशविरा करते थे । इधर यशपाल ने ३ बमों में मसाला भर उन्हें एक अलमारी में रख दिया था ।

एक्शन के दिन का समय और ब्यौरा वकीलो तथा अन्य रिश्तेदारों द्वारा भगतसिंह को पहुँचा दिया गया । एक पूर्व निश्चिन्त स्थान पर पण्डित जी अपने साथियों के साथ एक मोटर में बैठे होंगे । उस स्थान पर पहुँचते ही भगतसिंह और दत्त एक सकेत पर पुलिस गारद से पृथक् हो जायेंगे । पण्डित जी पुलिस गारद पर हमला बोल देंगे । भगतसिंह तथा दत्त शीघ्र ही कार में जा बैठेंगे जहाँ उनको रिवाल्वर दे दिये जाएंगे और फिर सब लड़ते हुए अपना मार्ग बना, वहाँ से निकलकर, कुछ इधर-उधर होकर, बहावलपुर रोड की कोठी पर पहुँच जाएंगे । परन्तु इधर पण्डित जी कार में भगतसिंह द्वारा किए जाने वाले चिन्ह की प्रतीक्षा करते ही रह गये । ऐसा प्रतीत होता है कि भगतसिंह को पण्डित जी का सन्देश मिला ही नहीं था और उन दोनों को पुलिस से पृथक् न होनेपर पुलिस पर हमला नहीं किया जा सकता था, वे दोनों भी तो उस हमले में मर सकते या घायल हो सकते थे । इसी कारण वह एक्शन उस दिन तो स्थगित कर दिया गया और फिर उसी एक्शन का दिन पहली जून नियुक्त हुआ ।

पण्डित जी प्रत्येक एक्शन सोच-विचार और गम्भीरता के साथ निश्चित करने थे, भावुकता में नहीं । भगतसिंह को छुड़ा पण्डित जी पूरी तरह तैयार होकर गये थे, परन्तु जब भगतसिंह ने पूर्व निश्चित सकेत नहीं मिला, तो उन्होंने यशपाल के धार-भार कहने पर भी भगतसिंह को उस समय छुड़ाने का प्रयत्न नहीं किया । बाद में यशपाल ने अपनी भूल पण्डितजी से स्वीकार की, जा केवल भावुकता के कारण ही थी ।

अब पहली जून की प्रतीक्षा होने लगी। तैयारियां पहले से भी अधिक कर ली गयीं। तैयार बम वहावलपुर वाली कोठी की अलमारी में रखे थे। २६ मई को भगवतीचरण, सुखदेव राज और वैशम्पायन के साथ एक बम लेकर लाहौर से कुछ दूरी पर रावी नदी के किनारे के जंगलों में बम टेस्ट करने के लिए गये। सन्ध्या का समय था। भगवतीचरण के हाथ में बम था जिसकी पिन ढीली थी, पास ही सुखदेव राज खड़ा था। कुछ दूर वैशम्पायन खड़ा उनकी ओर देख रहा था। यकायक बिना छोड़े ही भगवतीचरण के हाथ में बम फट गया, उससे उनका दायाँ हाथ और बाजू, मुख का कुछ भाग तथा पेट का कुछ अंश भी उड़ गया, आखें बाहर निकल आईं, रक्त नल की धारा के प्रवाह की भाँति निकल रहा था। वैशम्पायन ने शीघ्र ही उनको अपनी गोदी में ले लिया और रोने लगा। उधर बम का एक छर्रा सुखदेव राज के पाव में भी लगा। वह तो साइकिल पर नगर की ओर चल दिया। वैशम्पायन को रोते देख भगवतीचरण ने मुस्कराते हुए उसको धैर्य वधाया और कहा कि वह उनकी (भगवतीचरण की) ओर से पण्डित जी से क्षमा माग ले कि वह उनका अधिक साथ न दे सके। उन्हें इस बात का भी दुःख था कि वह भगतसिंह को छुड़ाने से पहले ही अपने जीवन के अन्त पर पहुँच गये। उनके शरीर से रक्त बह रहा था। शरीर का आधा भाग उड़ जाने से जो तकलीफ थी, वह तो थी ही। वह यह भी जान गये थे कि उनके जीवन का अन्त कुछ ही मिनटों में होने वाला था, परन्तु उनके मस्तिष्क पर एक भी लकीर नहीं पड़ी। वह हँस-हँस कर तथा गम्भीरता के साथ वैशम्पायन को अपना अन्तिम सन्देश दे रहे थे। उन्होंने पण्डित जी को सन्देश दिया कि उनकी मृत्यु की पूर्वाह त करते हुए पण्डित जी भगतसिंह को १ जून को छुड़ाने का एकशन अवश्य करें। प्रोग्राम में कोई रद्दोबदल न करें।

यह थे वह वीर जिनको अज्ञान अथवा ईर्ष्या से एक कथित आन्तिकारी ने सी. आई. डी. का गुप्तचर घोषित किया था। भगवतीचरण ने अत्यन्त वीरता के साथ आन्तिकारियों के उस उपदेश के अनुसार अपनी जान दे दी कि आन्तिकारी बिना जाने-पहचाने, बिना रोए-धोए और बिना प्रशम्भा के ही अपना कर्तव्य पालन करता है। (A revolutionary dies unknown, unwept and unsung)।

वहावलपुर रोड कोठी पर बम फटे

सुखदेव राज घटना स्थल से ग्वालमण्डी की ओर गया जहाँ दल में सहा-नुमति रखने वाले कविराज डा० परमानन्द जी रहते थे। यह वही डाक्टर थे

जिन्होंने कुछ वर्षों बाद बम्बई में आयुर्वेदिक कालेज स्थापित किया और बम्बई निवासियों की सेवा करते-करते वही स्वर्गवासी हुए। डाक्टर परमानन्द साइकिल से सीधे मुखदेय राज के बताए घटनास्थल की ओर चल दिये। रास्ते में वैशम्पायन मिला, जिसने उनको चापू भाई (भगवतीचरण का दल का नाम) की मृत्यु हो जाने की सूचना दी। वैशम्पायन वहां से सीधा बहावलपुर रोड घाले बगले पर गया और वहां पण्डित जी को कुछ भरा समाचार सुनाया। पण्डित जी एक बार तो विचलित हो उठे। फिर क्षीघ्र ही अपने को सम्भाल, वैशम्पायन और यशपाल को साथ लेकर घटनास्थल पर आधी रात बीते जा पहुंचे। भगवतीचरण उस समय तक वीरगति को प्राप्त हो चुके थे। भगवतीचरण के लम्ब-चौड़े सुडौल शरीर को पत्थरों के साथ बाध रावी नदी के किनारे पर एक गढ़ा खोदकर उसमें दबा कर लोट आए। यशपाल ने इस सम्बन्ध में यह क्यों लिखा कि भगवतीचरण के शव को चादर में पत्थरों के साथ बाध कर नदी में डाल दिया था, परन्तु दूसरे दिन वहां से निकाल कर एक गढ़ा खोदकर दफना दिया गया था, इसका कारण मैं नहीं समझ सका। वैशम्पायन के अनुसार तो उसने अपने पुराने मित्र लाहौर के दूसरे पड़ोस के सुलतानी गवाह को बचाने के लिए ही ऐसा लिखा है क्योंकि इन्द्रपाल ने सुलतानी गवाह बनने के पश्चात् भगवतीचरण के दफनाने का स्थान पुलिस को बता दिया था और पुलिस वहां से उनकी अस्थियां निकाल लाई थी। यशपाल ने ही इन्द्रपाल को यह घटना बताई होगी, ऐसा अनुमान है।

भगवतीचरण की मृत्यु से पण्डित जी को बहुत बड़ा आघात पहुंचा मानो दायी हाथ ही टूट गया हो। दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था। प्रायः होस्टल में और फिर मेरे घर में दोनों घण्टों बैठे सोच विचार करते रहते थे। दल के ए शनो की योजनाएं सोचते रहते। सोचते-सोचते या बोलते-बोलते थक जाते थे तो खड़े हो हाथों द्वारा एक-दूसरे की शारीरिक शक्ति की परीक्षा करते थे। पण्डित जी ने रोते-रोते अपने घनिष्ठ मित्र की मृत्यु की सूचना उनकी पत्नी भाभी को सुनाई। परन्तु भाभी भी एक वीरगना थी और एक वीर पति की पत्नी। उन्होंने हार्दिक दुःख होते हुए भी पण्डित जी का ध्यान भगवतीचरण के अन्तिम सन्देश की ओर आकर्षित किया जिसमें उन्होंने पण्डित जी से अनुरोध किया था कि वह किसी कारण भी भगवत्सिंह के छुड़ाने की योजना को तर्क न करें।

पण्डित जी को इससे पहले भी कई ऐसे आघात लग चुके थे। भगवतीचरण की याद को न भुलाते हुए भी वह अपने कर्तव्य-पालन में लग गए।

वह दल के काम को मदैव अपने व्यक्तित्व से ऊँचा समझते थे । उन्होंने भगतसिंह के छुड़ाने के एक्शन को दोहरा डाला । परन्तु वह भी उनके भाग्य में नहीं लिखा था ।

३०-३१ मई की रात वह कोठी के पिछले भाग के आगन में सो रहे थे । साथ ही की दो चारपाइयों पर भाभी तथा दीदी सो रही थी । थोड़ी दूर पर मदनगोपाल और छैलविहारी सो रहे थे कि यकायन अलमारी में रखे बम स्वयं ही फट गए । तीव्र धमाके से चकित हो सभी जाग उठे । पण्डित जी ने उस अमाधारण अवस्था को एक क्षण में समझ लिया । सबसे पहले वह बाहर के भाग में उस स्थान पर आए जहाँ रेलिंग मकान के उनके भाग को दूसरे भाग से पृथक् कर रही थी । दूसरी ओर उस भाग में रहने वाले पति पत्नी धमाके की ध्वनि सुनकर वहाँ आ गए थे । पण्डित जी ने उनको अपना पिस्तौल दिखाया और कहा कि वे किसी से भी कुछ न बहे और अपने विस्तारों पर लौट जाए । वह दोनों ही हा-हा कर अपने कमरे में लौट गए और पुलिस को उनसे किसी प्रकार भी सहायता नहीं मिली । सच तो यह है कि पुलिस को बहुत दिनों बाद तक यह पता नहीं चल पाया कि उस बगले के इस भाग में कौन लोग रहते थे और वे कहाँ चले गए । हा, इतना अवश्य समझ गए होंगे कि वे अवश्य ही भ्रान्तिकारी रहे होंगे ।

को इस बात का ज्ञान नहीं था कि दल में स्त्रियाँ भी सदस्य बन गई हैं अथवा काम करने लगी हैं। पण्डित जी भी इस बात को छिपाए रखना चाहते थे। परन्तु यह भेद तो पुलिस को कोठी पर पहुँचते ही खुल जाना था, जहाँ उनको स्त्रियों के साड़ी-जम्पर, पेटीकोट आदि मिलते। पण्डित जी भाभी तथा दीदी को अन्य सुरक्षित स्थान पर छोड़ तुरन्त साइकिल पर नौटें। उस समय तक पुलिस वहाँ नहीं पहुँची थी। वह कोठी के अन्दर गए। सब बपड़े एक्जिट कर एक गट्ठर बाधा, उसको साइकिल पर रख कोठी के पीछे भाग से बाहर निकले। सामने पुलिस का दस्ता आ रहा था। उसने पण्डित जी को रोका और पूछा, "कौन है तू?" उत्तर दिया, "धोबी हूँ।" फिर पूछा, "कहाँ से बपड़े लाया है?" "हुजूर इस कोठी से।" पण्डित जी ने कोठी के दूसरे भाग की ओर संकेत कर दिया। पण्डित जी सादगी और सरलता के साथ एक यू० पी० के भैया धोबी की भाँति बोल रहे थे। पुलिस को उन पर शेषमान सन्देह नहीं हुआ। पुलिस को उस समय तक यह मालूम नहीं था कि वम इसी कोठी में फँसे हैं। वे लोग आगे चले गए और पण्डित जी ने यह बाण्ड मुँह सुनाते हुए कहा था कि उनकी जेब में पिस्तौल भरा प्रस्तुत था, आवश्यकता के समय वह पुलिस पर गोली चलाते हुए वहाँ से निकल जाते या लड़ते हुए अपनी जान दे देते। कुछ दिन पश्चात् छैलबिहारी शिमला चले गये और मदनगोपाल लाहौर।

परन्तु वैशम्पायन के अनुसार वगले में पुलिस को दो पुस्तकें जो पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी की थी और यशपाल लिखित प्रकाशों के नाम के पत्र के टुकड़े मिल गये थे।

भगवतीचरण की मृत्यु और बहावलपुर रोड वाली कोठी पर बम विस्फोट का एक परिणाम यह हुआ कि भगतसिंह के छुड़ाने का एक्शन एक प्रकार से असम्भव सा हो गया। कोठी में वम विस्फोट ने पुलिस को अत्यन्त सतर्क कर दिया और पण्डित जी अपने और साथियों को सुरक्षित रखने में व्यस्त हो गए। वह लाहौर छोड़ दिल्ली आ हिन्दू कालेज के होस्टल में भवानी सिंह के साथ रहने लगे और यहाँ से दल के काम का संचालन करने लगे।



आजाद १७ वय की आयु मे भासी मे

गाडोदिया बैंक पर धावा

लाहौर में भगतसिंह के छुटाने के सम्बन्ध में खर्च हुआ रुपया भगवतीचरण और दुर्गा भाभी ने दिया था। वह सब खर्च हो गया और दल धनहीन ही बना रहा। दल का काम दिनोदिन विस्तृत होता जा रहा था और पुलिस की आंखों में अब अधिक खटकने लगा था। पण्डित जी को फिर से धन एकत्रित करने में अपना ध्यान लगाना पड़ा।

जून का महीना था। पण्डित जी फिर देहली में आ गये थे। उनका ध्यान किसी बैंक के ऊपर धावा बोलने की तरफ गया। उन्होंने कई दिनों तक इम्पीरियल बैंक से रुपये लाने-ले जाने का अध्ययन किया। उसके खजांची कश्मीरी दरवाजे के खजाने से दो बन्दूकों से लैस पुलिस सिपाहियों के साथ एक लारी में रुपया लाते थे और रेलवे क्लियरिंग एकाउण्ट्स आफिस ले जाते थे। अनुमान था कि यह रुपया एक लाख से कम नहीं होगा। पण्डित जी ने उस लारी पर धावा मारने की योजना बना डाली और इस एक्शन के लिए पहली जुलाई निश्चित की। वार में यह एक्शन करना था। एक्शन में भाग लेने वाले सभी साथी दिल्ली में प्रस्तुत थे। पण्डित जी को पूर्ण विश्वास था कि वह इस एक्शन में सफल रहेंगे और यदि अनुमानानुसार एक लाख रुपया मिल गया तो दल को धन की चिन्ता से छुटकारा मिल जाएगा।

परन्तु भला ऐसे भाग्य कहा था कि इतना रुपया इतनी सरलता से दल को मिल जाए। पहली जुलाई को इलाहाबाद में पण्डित मोतीलाल गिरफ्तार कर लिए गए। उनकी गिरफ्तारी ने सारे देश में एक हलचल-सी फैल गई।

दिल्ली में पुलिस सतर्क हो गई और पुलिस का गस्त बढ़ा दिया गया। हथियार वन्द पुलिस लाइनों में गारे नगर का दौरा लगाने लगी। पण्डित जी इस परिणाम पर पहुँचे कि उस दिन बैंक का मनी एक्शन करना बुद्धिमानी नहीं होगी।

दिल्ली नगर में एक छोटा-सा गाडोदिया स्टोर था। इसमें मालिक सेठ लक्ष्मीनारायण गाडोदिया थे, जिन्होंने एक दान के रूप में स्वदेशी स्टोर खोल रखा था। दल ने पहले उनको दल के नाम से एक पत्र के द्वारा दस हजार रुपया मागा। सेठ जी ने उस पत्र का उत्तर नहीं दिया, परन्तु पुलिस ने उस पत्र की सूचना भी नहीं दी। धन का इतना अभाव था कि पण्डित जी ने उन्हीं के स्टोर पर धावा बोलने की योजना बना डाली। इस स्टोर की ओर ध्यान कैलाशपति ने ही दिनाया था और उसने ही १०,००० रुपये वाला पत्र लिखा था।

गाडोदिया स्टोर में एक युवक विशम्भरदयाल काम करता था। वह कैलाशपति के सम्पर्क में आ चुका था। उसने बताया था कि प्रत्येक दिन शाम को आठ बजे स्टोर का खजाना ऊपर के कमरे में रोकड़ा सम्भालता है। वही समय एक्शन के लिए सर्वोत्तम होगा। इसी स्टोर में एक दर्जीखाना भी था, जिसमें टेलर मास्टर हरद्वारीलाल थे। उनका सम्पर्क भी कैलाशपति से हो चुका था और बाद में कैलाशपति उन्हीं के मकान बाजार सीताराम में रहता था, जहाँ से वह २८ अक्टूबर १९३० को पकड़ा गया था। रुपये का अन्दाजा विशम्भरदयाल ने लगभग २०,००० रुपये रोज का बताया था।

पण्डित जी ने गाडोदिया स्टोर से रुपया छीनने का पूरा व्यौरा बनाया। बनारस से विद्याभूषण, लाहौर से धनवन्तरी दिल्ली से कैलाशपति, रोहतक से लेखराम और दिल्ली से एक अन्य सदस्य काशीराम, इन सबको एक्शन से एक दिन पहले दिल्ली में एकत्रित किया। दल के पास एक सेकण्डहैंड कार थी, जिसमें इसमें पहले अमेम्बली बस काण्ड के समय भगतसिंह तथा दत्त को छुड़ा कर ले जाने की योजना बनाई थी, परन्तु काम में नहीं लाई गई थी। लेखराम ने कार चलानी पहले से सीख ली थी। योजना के अनुसार कार का इजिन स्टार्ट कर उसको म्यूनिसिपल बाग में बूचा नटवा के अन्दर के दरवाजे के सामने रखा गया। यह दरवाजा बाग में खुलता था। विद्याभूषण और धनवन्तरी गली में खड़े होकर हवा में गोली चलाते रहे। इससे जनता वहाँ एकत्रित हो गई, परन्तु किसी ने भी इन लोगों के समीप जाने अथवा उनको पकड़ने

का साहस नहीं किया। पण्डित जी स्वयं काशीराम और कैलाशपति को साथ ले ऊपर के कमरे में पहुँचे। खजाची रुपया सभाल रहा था। पण्डित जी ने अपना पिस्तौल निकाल खजाची की ओर कर उससे रुपया दे देने के लिए कहा। सामने के भाग में सेठ जी का निवास स्थान था। वही उनकी पत्नी तथा अन्य स्त्रियाँ उस समय उपस्थित थीं। वे स्त्रियाँ ऊँचे स्वर में चीखने लगीं। काशीराम को क्रोध आया और उसने उनकी ओर अपना रिवाल्वर ताना परन्तु चलाने के विचार से नहीं। पण्डित जी ने देखते ही उसको डाटा और रिवाल्वर जेब में रखने के लिए कहा। उधर खजाची समझ ही गया था कि रुपया दिए बिना काम नहीं चलेगा। उसने सारा रोकड़ा जो उस समय चादी के रुपयों में था (उन दिनों नोटों का अधिक रिवाज नहीं था) पण्डित जी के आगे खिसका दिया। यह रुपया जिसमें छोटी रेजगारी भी थी, एक बोरी में भर लिया गया। खजाची ने सेठ जी की पत्नी के सारे सोने चादी के जेवर भी पण्डित जी के सामने रख दिए। परन्तु पण्डित जी ने यह कह कर उन जेवरों को लेने से इन्कार कर दिया कि उनको माताओं और बहिनों के आभूषण नहीं चाहिए, वे डायू नहीं हैं।

हवा में गोली चलने और स्त्रियों की चीख-पुकार से गली में जनता एकत्रित हो गई थी, परन्तु अपनी जान पर खेलने के लिए, विशेषकर सेठ जी के लिए कोई प्रस्तुत न था। पण्डित जी सब रुपया ले और दल के सभी साथियों को साथ लेकर कार तक जा पहुँचे और वहाँ से वह कार हिन्दू कालेज के होस्टल में ल जाई गई। उस समय ग्रीष्म ऋतु के कारण कालेज में छुट्टियाँ थी और होस्टल भी बन्द था। परन्तु भवानीसिंह एक कमरे में वही रहता था और पण्डित जी भी उनके साथ ठहरे हुए थे। होस्टल का माली, जो चौबीदार का काम भी करता था, पण्डित जी को मेरे साथ रहते हुए देख चुका था। यही नहीं, पण्डित जी ने अपने लिए एक रेगमी शेरवानी, एक चूड़ीदार पाजामा और एक पगड़ी बनवाई थी, स्वाटलैण्ड के जामूसों को भारने के लिए, परन्तु यह निश्चय हो जाने के पश्चात् कि वह एक्शन नहीं किया जाएगा, उन्होंने वे बपड़े मानों को भेंट कर दिये थे। इसी कारण माली ने उनके तथा भवानी-सिंह के होस्टल बन्द होते हुए भी उनका होस्टल में रहने में बाधा नहीं डाली।

गिनने पर रुपया लगभग चौदह हजार निपला। लगभग छ-सात सौ रुपये की छोटी रेजगारी भी थी जो यमुना नदी में फेंक दी गई। रुपया, पञ्जाब, दिल्ली और मू भी म बराबर के भागों में बाट दिया गया। वंशम्पादन के

अनुसार ६ हजार रुपये बानपुर में बम का कारखाना खोलने के लिये बीरभद्र तिवारी को दिया गया। इनमें से डेढ़ हजार रुपया तिवारी को दल के प्रचार के लिये दिया था। चार हजार बैलागपति को दिल्ली में सातुन के कारखाने की आड़ में पिक्किक एसिड बनाने के कारखाना खोलने के लिये दिया। २ हजार रुपया अफ्रीदी बादशाह गुल के पास भेजने के लिये रखा गया। बादशाह गुल के द्वारा दल के रावनपिण्डी स्थित मदस्य रामविश्वन पिस्तौन, रिवाल्वर आदि खरीदते थे।

दिल्ली कुतुब रोड पर साबुन का कारखाना

दिल्ली शाखा के भाग में आने वाले रुपये से कुतुब रोड पर एक बड़ा मकान किराये पर लिया गया। अभिप्राय था पिकरिक एसिड बनाना। नाम रखा गया हिमालय टॉयलेट फैंक्टरी। साबुन और तेल भी बनाए गये, परन्तु केवल आड लेने के लिए ही। वस्तुतः तो पिकरिक एसिड बनाया जाता था और साथ ही गनवाटन और नाइट्रो ग्लिसरीन। यह सभी बम बनाने के मसाले थे। फैंक्टरी में काम करने वाले थे, विमलप्रसाद जैन और उनकी पत्नी, यशपाल, कैलाशपति, गिरवरसहाय, वात्स्यायन, प्रकाशवती, भवानीसहाय इत्यादि। भाभी और दीदी भी आती-जाती रहती थी। पण्डित जी कानपुर लौट गए थे, जहाँ वह बमा के खोल बनवा रहे थे।

यहाँ प्रकाशवती के सम्बन्ध में उसका परिचय देना कुछ अनुचित नहीं होगा। यह मुझे पण्डित जी ने नहीं बताया था, यशपाल, कैलाशपति, विमलप्रसाद, धनवन्तरी आदि के द्वारा यह समाचार प्राप्त हुआ था।

प्रकाशो का परिचय दल को यशपाल ने ही दिया था। उसने कहा था कि प्रकाशो कई हजार रुपये लेकर घर से भाग कर दल में सम्मिलित हो जायगी। भगवतीचरण या आजाद को प्रकाशो की कम उम्र होने का उस समय तक ज्ञान नहीं हुआ जब तक वह दल में आ न गई और जब आई तो रुपया लेकर नहीं, खाली हाथ।

आजाद तथा भगवतीचरण ने उसको किसी विशेष स्थान पर रखकर उसके पढ़ाने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा परन्तु वह यशपाल को स्वीकार नहीं था।

प्रकाशवती अपना घर छोड़ दल के भिन्न-भिन्न म्दानों पर लाई गईं । पण्डित जी ने यह सब कुछ अनुचित समझते हुए भी उसको दल में स्थान दे दिया ।

कुतुब रोड के कारखाने में वात्स्यायन और यशपाल की देख-रेख में वमों का मसाला बन रहा था । प्रकाशवती भी वही थी । कुछ अश में विलासिता आ जाने से यशपाल की कार्यशक्ति में शिथिलता आ गयी थी । वह फिज़ूलखर्च भी बहुत था । स्वयं तो अच्छे से अच्छे कपड़े पहनता था और अच्छे से अच्छा खाना खाता था ही, उसने प्रकाशवती पर भी अनुचित अश में रुपया खर्च करना आरम्भ कर दिया । यह बात अन्य सदस्यों को खलने लगी । उनमें धनवन्तरी भी था । धनवन्तरी लाहौर के एक अच्छे घराने में उत्पन्न हुआ था । कालेज के दिनों में नौजवान सभा के काम का भार अपने कन्धों पर ले लिया था । नेशनल कालेज में पढता था पर अन्त में उसने वैदिक की परीक्षा पास कर ली थी । वह यशपाल तथा भगवतीचरण और अन्य दल के सदस्यों के सम्पर्क में आ चुका था और जिन दिनों भगतसिंह वाला अभियोग लाहौर में चल रहा था, वह पण्डित जी से भी मिल लिया था । पण्डित जी उस पर पूरा विश्वास करते थे ।

भगवतीचरण की मृत्यु के पश्चात् पण्डित जी ने यशपाल को पंजाब के दल का भार सौंप दिया था । परन्तु जब उनको यशपाल के काम में शिथिलता की रिपोर्टें मिलीं तो उन्होंने यशपाल को दिल्ली की फैक्ट्री में भेज धनवन्तरी को पंजाब के दल का नेता नियुक्त कर दिया था । दिल्ली की फैक्ट्री में भी यशपाल अपना पहले जैसा ही जीवन व्यतीत करता रहा । शायद उसके लिए अब अपने स्वभाव को बदलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया था । धनवन्तरी और कैलाशपति उसके विरुद्ध पण्डित जी को लगातार शिकायतें भेजते रहे । उन शिकायतों में कितनी सत्यता थी, मैं नहीं कह सकता । मैं तो उन दिनों टायफाइड के रिलैप्स से पीडित था, परन्तु बाद में पण्डित जी से मिलने पर मुझे उन्होंने बताया था कि वह यशपाल से बहुत चिढ़ गए थे ।

कैलाशपति, विमलप्रसाद तथा अन्य साथियों के साथ धनवन्तरी ने भी यशपाल के विरुद्ध पण्डित जी से शिकायत की थी ।

यशपाल को गोली मारने का निश्चय

पण्डित जी यशपाल के आचरण में पहले ही चिढ़े हुए थे। परन्तु वह दल का एक जिम्मेदार व्यक्ति था। अपनी जान पर खेल कर लाहौर ब्रिगेड की ट्रेन पर बम चलाया था। अपना जीवन हथेली पर रख कर कोई भी काम करने के लिए प्रस्तुत रहता था। इसी कारण पण्डित जी उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करना चाहते थे। परन्तु दिल्ली की "माबुन्" फँक्ट्री का समाचार जान और सभी सदस्यों की गप्पो पर पाकर वह इस निश्चय पर पहुँचे कि यशपाल के विरुद्ध कुछ न कुछ कदम उठाना ही पड़ेगा।

पण्डित जी ने कानपुर में जगन्नाथ में केन्द्रीय समिति की एक विशेष सभा बुलाई, जिसमें उपस्थित थे उनके अनिरिक्त पञ्जाब से धनवन्तरी, दिल्ली से कैलाशपति और यू० पी० से वीरभद्र निवारी और सत्गुरुदयाल अवस्थी। उस बैठक में यशपाल के विरुद्ध आरोप रखे गए। यशपाल पर आरोप लगाया गया कि उसने प्रकाशो को अपने स्वार्थ के लिए उसके अभिभावकों की इच्छा के विरुद्ध घर से निकाला। उसने दल को यह कह कर धोखा दिया कि प्रकाशो दल के लिए कई हजार रुपये लेकर आ रही थी जो रास्ते में गिर गया और यह कि यशपाल ने प्रकाशो को उसके घर से निकाला था, दल के काम के लिए नहीं बल्कि अपनी विलासिता के लिये, विवाह करने के लिये जिसके लिये वह दल से अनुमति लेने के लिए बाध्य था परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। यह तो दल के नियमों के अनुसार अपराध था। यह सभी की सम्मति थी कि यशपाल में दल के काम में सहायता न मिल उल्टी हानि ही हो रही है। दल की

भलाई इसी में होगी कि यशपाल को गोली मार कर समाप्त कर दिया जाए । यशपाल को तार दे कानपुर बुलाया गया और उसके मारने का भार वीरभद्र तिवारी को सौंपा गया ।

वैसे तो पण्डितजी स्वयं इस कार्य को पूरा करते परन्तु वीरभद्र तिवारी को सौंपने में भी एक भेद था । वीरभद्र दल का एक अतीव जिम्मेदार सदस्य था । यू पी का संगठनकर्ता था । यू पी के सभी सदस्य तथा ठिकाने उसे मालूम थे, जो वह पण्डित जी से छिपाता था । उसके पास दल के अनेक हथियार भी थे, जो वह पण्डित जी को कोई न कोई बहाना बना कर नहीं दिया करता था । उसका सम्बन्ध यू पी सी आई डी के इन्स्पेक्टर शम्भूनाथ से था ही । वे दोनों एक ही मकान के दो भागों में रहते थे । पण्डित जी ने ऐसा महसूस किया था कि तिवारी दल का अधिक साथ न दे सी आई डी का साथ दे रहा था । वह चाहते थे कि तिवारी से वह एक ऐसा काम, एक्शन, करा लें जिससे उसके लिए दल का छोड़ना अथवा सी आई डी का साथ देना असम्भव हो जाय । यही कारण था उन्होंने वीरभद्र के जिम्मे यशपाल को गोली से मारने का काम सौंपा ।

परन्तु तिवारी चालाक व्यक्ति था । हो सकता है उसने स्वयं या शम्भूनाथ के कहने पर यह निश्चय कर लिया हो कि वह दल के किसी ऐसे काम में भाग न लेगा जिससे उसको भविष्य में बचना असम्भव या कठिन हो जाए । हो सकता है वह उस समय सी आई डी के हाथों में खेल रहा हो ।

वीरभद्र तिवारी ने केन्द्रीय समिति की सभा में यशपाल को मौत की सजा देने का विरोध नहीं किया था । वह प्रस्ताव तो सर्वसम्मति से पास हुआ था । परन्तु वह स्वयं इस कार्य-भार को अपने ऊपर नहीं लेना चाहता था और न ही सदैव की भांति वह कानपुर में कोई एक्शन होने देना चाहता था जिससे उसकी निजी परिस्थिति बिगड़ जाये ।

इसी कारण जब कैलाशपति ने यशपाल को दिल्ली से कानपुर भेजा तो तिवारी उसको अपने घर ले गया और उसे सब भेद बता रात ही की गाड़ी से कानपुर से रवाना कर दिया ।

जब पण्डित जी को इस विश्वासघात का पता चला तो उन्होंने कैलाशपति को आज्ञा दी कि वह दिल्ली जा यशपाल को गोली मार दे । परन्तु दुष्ट की बात थी, उसका भी उस समय काफी पतन हो चुका था । उधर तिवारी ने विश्वासघात किया, इधर कैलाशपति ने चाहा कि यशपाल को यदि वह दिल्ली

से भगा दे तो प्रवासवती उससे हाथों पट जायगी। यह यह नहीं जाता था कि प्रवासवती उमरा गाथ कभी भी न देती। वह यह भी भूल गया कि यशपाल उनसे कहीं अधिक बुद्धिमान और चालाक व्यक्ति था। वह प्रवासवती को तथा हथियार आदि गाथ नेपर ताहीर चला गया और कैलासपति मुख तावना ही रह गया।

लाहीर में यशपाल को मारने का भार धनवन्तरी को सौंपा गया। परन्तु धनवन्तरी ने अपने पतंग में छील दियाई। यशपाल के कहने के अनुसार धनवन्तरी ने उससे मेल कर लिया। यशपाल के इस कथन में कुछ सन्देह दोगता है। वैशम्पायन और सुमदेव राज के कथनानुसार वे दोनों और धनवन्तरी उसको आजाद के कहने पर देहली लाय। आजाद ने यशपाल से यह मालूम कर लिया कि बानपुर में तिवारी ने ही उसको केन्द्रीय समिति का निश्चय देता उसे देहली लौटा दिया था।

आजाद ने महसूस किया कि यशपाल से अधिक तिवारी ने विश्वासघात किया है। यशपाल के विरुद्ध आरोप गम्भीर होते हुए भी एक बार क्षमा किये जा सकते थे या उसको दल से निवाला जा सकता था परन्तु वीरभद्र तिवारी की गद्दारी तो किसी भी प्रकार अनदेखी नहीं की जा सकती थी। यशपाल भी आजाद की इस राय से सहमत था।

आजाद ने यशपाल को तो क्षमा कर दिया परन्तु उसको और प्रकाशो को दल से बाहर निकाल दिया। यशपाल जानता था कि अब तक जो वह काम कर चुका था, उसके लिए दल के बाहर रहकर जीवन बिताना सुलभ न था। वह दल में ही रहने का इच्छुक था। उसने आजाद से वादा किया कि वह तिवारी को मौत के घाट पहुँचायेगा। आजाद को उस पर पूर्ण विश्वास नहीं था। उन्होंने स्वयं ही यशपाल के साथ जाने का निश्चय किया। वह जानना चाहते थे कि यशपाल कितने गहरे पानी में है। परन्तु निश्चित स्थान और समय पर तिवारी नहीं आया। क्या यशपाल ने तिवारी के पिछले एहसान का बदला चुका दिया था। सुमदेव राज का तो ऐसा ही विचार है और ३६ वर्ष पश्चात् यशपाल व तिवारी की सफाई वकालत से ऐसा आभास होता है कि सुखदेव राज की राय ठीक ही है।

परन्तु निजी तौर पर मुझे इसका कोई ज्ञान नहीं है और इसी कारण मैं अपनी कोई राय नहीं दे रहा हूँ।

यशपाल का इस प्रकार दल से नाता तोड़ दिया गया। परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि उसकी त्रुटियों के कारण दल में कमजोरियाँ आ गईं। उसी के कारण दल के दो जिम्मेदार सदस्यों ने पण्डित जी के प्रति विश्वासघात किया और जो आगे चलकर पण्डित जी की मृत्यु का कारण बना। पण्डित जी का विचार सत्य ही था कि दल में स्त्रियों का कोई स्थान नहीं है।

यशपाल के काण्ड से पण्डित जी को एक घोर मानसिक आघात पहुँचा। वह खिन्न-चित्त हो दल से एक प्रकार अलग से रहने लगे। दल को भी बहुत कुछ अशो में उन्होंने छिन्न-भिन्न कर दिया। जितने भी शस्त्र एकत्रित किए थे उन्हें सभी प्रान्तों में बाँट स्वयं कानपुर में श्री रामचन्द्र मुसद्दी तथा श्रीमती भाभी के साथ उनके आर्य समाज, मेस्टन रोड वाले मकान में रहने लगे। दिल्ली की साबुन फैक्टरी भी बन्द कर दी गई और वहाँ का सारा सामान कपूरचन्द जैन के मकान के तहखाने में रख दिया गया। देहली में केन्द्रीय समिति भग्न करने के पश्चात् आज़ाद कानपुर चले गये जहाँ वह रामचन्द्र मुसद्दी के यहाँ रहने लगे। पहले तो वहाँ सोते ही थे, खाना कहीं मिल जाता तो खा लेते वरना भूखे ही सो जाते थे। जब भाभी और मुसद्दी को इस बात का पता चला तो उन्होंने आज़ाद से उनके घर खाना खाने का आग्रह किया। आज़ाद खाने भी लगे। उन दिनों मुसद्दी की आर्थिक अवस्था कुछ साधारण ही थी। कभी-कभी खाना पूरा नहीं होता था। ऐसे समय आज़ाद यह कहकर खाना नहीं खाते थे कि वह तो खा आये हैं।

परन्तु दल का उनको सदैव ध्यान रहता था। उन्होंने गाँडोदिया एक्शन के पश्चात् कानपुर के बुली बाज़ार में एक मकान किराये पर लेकर वहाँ बम के खोल बनाने का कारखाना चालू कर दिया। दिन को तो कुछ और ही सामान बनता था परन्तु रात को खोल टाने जाते थे।

धीरभद्र व यशपाल के सम्बन्ध में विश्वासघात के पश्चात् उन्होंने यह कारखाना बन्द कर दिया था।

इस सम्बन्ध में उनकी निर्भीकता के दो उदाहरण कुछ साधियों ने बनाये हैं।

जब लाहौर पड्यन्थ के समय आज़ाद फरार घोषित किए गये थे तो उनके पकड़वाने के सम्बन्ध में कुछ इनाम घोषित किया गया था। ऐसा एक इस्तहार कानपुर स्टेशन के समीप के थाने में भी चिपकाया गया था। एक दिन आज़ाद एक ग्रामीण के बेश में वहाँ पहुँचे और पहरे पर सिपाही से पूछा,

“हवलदार माहव, इस इस्तहार मे क्या लिखा है।” उसने बता दिया। आजाद बोले, “हवलदार माहव कुछ हमे उनका नाम पता बता दो तो हम भी उनको पकड़वा कर दो हजार रुपये वसूल कर लें।”

दूसरा उदाहरण मुली बाजार मे वम फैक्टरी के सम्बन्ध मे है। जब आजाद ने इस फैक्टरी को बन्द करने का निश्चय कर लिया तो उनको पुलिस से मजाब करने की इच्छा हुई। वहा से लगभग सभी आवश्यक सामान हट वम के कुछ खोल छोड़ मजान से चले गये और पुलिस को एक पत्र द्वारा उस फैक्टरी के सम्बन्ध मे एक पत्र डलवा दिया। पुलिस ने जब वहा छापा मारा तो सड़क की दूसरी ओर साइक्लिंग लिये आजाद पुलिस को उल्लू बनाने का आनन्द ले रहे थे।

पण्डित जी का क्रोध बीरभद्र तिवारी पर बढ़ता ही गया, उन्हें यह तो यशपाल से मालूम हो गया था कि यशपाल को तिवारी ने कानपुर से भगा दिया था जिससे वह (तिवारी) कानून की पकड मे न आने पाये। यह तिवारी का पहला अवसर नहीं था जब उसने अपने आपको किसी प्रकार के कानून तोड़ने के जुर्म से बचने का सफल प्रयत्न किया था। पण्डित जी चाहते तो किसी भी समय बिना किसी आपत्ति के तिवारी के जीवन को समाप्त कर सकते थे। परन्तु अभी तक यू० पी० के सारे सुरक्षित स्थानों के पते, सदस्यों के नाम तथा सहानुभूति रखने वालों के नाम तथा पते तिवारी ही को मालूम थे। तिवारी को मार कर पण्डित जी को उनका किसी का पता नहीं मिलता। पण्डित जी इस कारण तिवारी से नाम तथा पते मालूम करने के प्रयत्न मे लगे परन्तु वह सफल न हुए। तिवारी ने चालाकी से न तो हस्त्र ही दिये और न ही नाम तथा पते बताये। पण्डित जी का विचार था कि यदि तिवारी उनका साथ देता तो वे उसको साधारण जीवन बिताने के लिए कह कर दल से अलग कर देते जैसा उन्होंने यशपाल के साथ किया था। पण्डित जी की ओर से तिवारी सतर्क अवश्य हो गया। हो सकता है, उन्ही दिनों तिवारी ने पण्डित जी के साथ विश्वासघात करने का निश्चय भी कर लिया हो।

दल का पुनर्गठन

पण्डित जी, जिनके जीवन का प्रत्येक पल और घड़ी स्वाधीनता प्राप्त करने मे बीती थी, अधिक दिन चुप बैठने वाले नहीं थे। उन्होंने शीघ्र ही निश्चय किया कि वह किसी न किसी प्रकार दल को विश्वसनीय साथियों की सहायता से फिर से चालू करें और दल मे अविश्वसनीय साथियों को सम्मिलित

न करें। दल के फिर से संगठन के कार्य के लिए उन्होंने वैशम्पायन (वच्चन) को अपने साथ लिया। दुर्गा भाभी भी उस समय कानपुर पहुँच गई थी और पण्डित जी के साथ रामचन्द्र मुसद्दी के स्थान पर ही ठहरी हुई थी।

कश्मीर से मेरे लौटने के कुछ दिनों पश्चात् एक दिन सुशीला जी (दीदी) मेरे घर आई। मैं उनमें पहले नहीं मिला था, परन्तु उनका नाम अनेकों बार पण्डित जी तथा अन्य साथियों से सुन रहा था। कश्मीर से लौटने पर मैंने कैलाशपति के आचरण अच्छे नहीं पाए। उसकी आचरणहीनता की कुछ बातें तो मैंने स्वयं अपनी आँखों से देख ली थी, विशेषकर उसका चन्द्रवती (कमला) के साथ अनुचित सम्बन्ध। मैं पण्डित जी से मिलकर उनको कैलाशपति की ओर से सावधान करना चाहता था परन्तु दिल्ली में कैलाशपति के अतिरिक्त किसी दूसरे साथी को पण्डित जी का पता मालूम नहीं था और कैलाशपति ने मुझे पता बताने से इन्कार कर दिया था कि पण्डित जी की आज्ञा है कि उनका पता किसी को भी न बताया जाए।

सुशीला जी को भी कैलाशपति के दुराचारी होने का पता चल चुका था। वह भी उससे तग आ गई थी और किसी विश्वसनीय साथी की तलाश में थी। जब वह मुझसे मिली तो दोनों ने ही पण्डित जी से मिल कर कुछ काम करने का निश्चय किया। दीदी को ज्ञात था कि पण्डित जी कानपुर में रामचन्द्र मुसद्दी के यहाँ ठहरे हुए हैं। हम दोनों उसी रात गाड़ी से कानपुर चले गए। दीदी ने मुझे पहले ही कह दिया था कि वह पण्डित जी की आज्ञा के बिना उनके निवास स्थान पर नहीं ले जाएंगी। हम तागे में माल रोड पर तार घर के सामने से जा रहे थे, देखा दूसरी ओर से पण्डित जी, दुर्गा भाभी तथा श्री मुसद्दी चले आ रहे हैं। पण्डित जी ने मुझे देखा। दीदी को तागे से उतार अन्य दोनों स्त्रियों के साथ कर दिया और स्वयं मेरे साथ तागे में बैठ सीपे मुसद्दी के निवास स्थान पर ले गए। कुछ देर बाद दोनों भाभियाँ तथा दीदी भी लौट आईं।

मैंने देखा पण्डित जी उस समय धन के अभाव से एक घोर सकट में थे। तिवारी के साथ न देने से उनका धन संचार पूर्णतया बन्द हो गया था। थोड़े ही समय में किसी को सहानुभूतक बना उससे रुपया लेना असम्भव ही था और बिना धन के जीवन निर्वाह तथा दल का पुनर्संगठन असम्भव था। मनी एक्शन कर सकते थे परन्तु उस एक्शन की तैयारी के लिए भी तो रुपया चाहिये था।

नहर पार का मनी एक्शन

उन्ही दिनों सितम्बर १९३० में बानपुर में पण्डित जी के सम्पर्क में एक युवक आया। उस युवक के पिता की गद्दी थी, जहाँ प्रत्येक दिन हजारों रुपये का लेन-देन होता था। युवक भायुक्त-सा था। उसने पण्डित जी से कहा कि क्या न वह उसी के पिता की गद्दी पर धावा बोलें। युवक का अनुमान था कि एक ही धावे में लगभग एक लाख रुपया मिल जाएगा। पण्डित जी ने सोचा कि यदि एक लाख रुपया एक ही समय में दल को मिल जाए तो एक ओर तो दल की आर्थिक समस्या हल हो जाएगी, दूसरी ओर तिवारी की ओर न ताकना पड़ेगा और वे भी निर्भीक हो, दल के संगठन करने में सलग्न हो जाएंगे।

इस एक्शन के लिए भी तो कुछ रुपये की आवश्यकता थी। बानपुर में वह थोड़ा सा भी रुपया एकत्रित न कर सके। यदि मुसद्दी के पास होता तो वह अवश्य दे देते, परन्तु उन दिनों उनका भी पतला ही हाल था और फिर भी उन्होंने निर्भीक हो अपना निवास स्थान तथा दास रोटी पण्डित जी को अर्पण कर रखी थी और दोनों ही, मुसद्दी तथा श्रीदेवी मुसद्दी जेल जाने के लिए प्रस्तुत थे।

उन्ही दिनों मैं दीदी के साथ कानपुर जाकर उनसे मिला। पण्डित जी मुझसे लगभग चार-पाच घण्टे बातें करते रहे। दिल्ली के कार्य की भी बातचीत चली। मैंने उनको कैलाशपति के चरित्रहीन होने का हाल बताया और यह भी कहा कि वह दिल्ली के दल को लगभग तोड़-सा चुका है और अब यह प्रयत्न कर रहा है कि किसी प्रकार दल के साधनों से रुपया तथा शस्त्र आदि प्राप्त कर चन्द्रवती को ले किसी दूर अज्ञात स्थान पर चला जाए। पण्डित जी ने मेरे कहने का आसानी से विश्वास नहीं किया। सच तो यह है कि वह किसी भी साथी के विरुद्ध कहीं हुई बात पर शीघ्र ही विश्वास नहीं किया करते थे। शायद अपने अनुभव में ही उनकी यह आदत बन गई हो परन्तु इसी आदत के कारण वह अन्त में अपना जीवन खो बैठ।

पण्डित जी ने मुझे एक लाख रुपये वाले एक्शन की योजना बताई और मुझसे पूछा कि क्या मैं कहीं से तीन सौ रुपये का प्रबन्ध कर सकता हूँ। मैंने बताया कि मेरे पास नकद रुपया तो नहीं है परन्तु मेरे ताऊ ने मेरे नाम अपने मकान का आधा भाग कर रखा है, उसे बेच कर रुपया ला सकता हूँ। पण्डित जी ने उसी रात मुझे दिल्ली लौटा दिया और आज्ञा दी कि शीघ्र से शीघ्र रुपये का प्रबन्ध कर कानपुर लौट जाऊँ।

मैं एक सप्ताह में रुपया लेकर कानपुर लौटा। रुपया ले पण्डित जी ने मुझे भी उस एक्शन में भाग लेने के लिए कहा, परन्तु शाम तक उनका विचार बदल गया। उन्होंने भाभी और दीदी को भी मेरे साथ दिल्ली भेज दिया और आदेश दिया कि मैं मकान किराये पर लेकर भाभी तथा दीदी को अपने साथ लेकर रहूँ और कैलाशपति से शनैः-शनैः सब शस्त्र प्राप्त कर और सहानुभूतियों के पते मालूम कर दल के भार को अपने हाथों में ले लूँ। चलते समय उन्होंने मुझे भाभी तथा दीदी की रक्षा के लिए एक रिवाल्वर दे दिया था।

पण्डित जी के जीवन से सीधा सम्बन्ध न रखते हुए भी मैं उस घटना का उल्लेख कर रहा हूँ जो उस रात सियालदा एक्सप्रेस में घटी। तीन इण्टर क्लास रेलवे टिकट थे, हम तीनों गाड़ी के एक इण्टर के डिब्बे में चढ़ गए। लगभग रात के दस या ग्यारह बजे थे। डिब्बे में तीन नीचे और दो ऊपर के बर्थ थे। नीचे के बर्थों पर तीन व्यक्ति चादर ताने सो रहे थे। ऊपर के एक बर्थ पर भी एक व्यक्ति सो रहा था और दूसरे बर्थ पर सामान रखा था। हम तीनों गाड़ी के डिब्बे में खड़े हो गए। रात भर की यात्रा थी, खड़े-खड़े जाना असम्भव था। मैंने बीच वाले बर्थ पर सोते हुए व्यक्ति को धीरे से हिला कर प्रार्थना की कि कम-से-कम स्त्रियों को तो बैठने के लिए थोड़ा-सा स्थान दे दे। उन साहब ने एक बार चादर से मुह निकाल हम तीनों को देखा और फिर चादर मुह पर तान ली। मैंने दूसरी बार फिर उसको हिलाया तो वह एकदम से उठा और खूँटी पर टगी हुई तलवार को मियान से निकाल मेरे छाती पर उसकी नोक लगा बोला, 'सीट नहीं मिलेगी, मौत मिलेगी।' मैंने पहले तो अचम्भे से उसको देखा और फिर उसी क्षण जब से रिवाल्वर निकाल उसकी छाती की ओर कर उत्तर दिया, 'एक सीट नहीं तीन सीटें चाहिए।' वह साहब रिवाल्वर देखकर औसान खो बैठे। तलवार मियान में डाल पूरा बर्थ खाली कर बोले, 'हाजिर है', और स्वयं नीचे ही बिस्तर बिछा सो गए। हम तीनों भी आराम के साथ दिल्ली पहुँच गए।

उधर पण्डित जी ने हम लोगों के दिल्ली लौटने के दूसरे ही दिन नहर पार कच्ची की गद्दी पर धावा बोला। ऐसा प्रतीत होता है कि कच्ची का लडका धवरा गया और उसने उन दिन तीन बजे न भेजकर सारा रुपया बैंक में दो ही बजे भिजवा दिया। परिणामस्वरूप पण्डित जी को बजाए एक लाख रुपय के बचन तीन हजार रुपया ही मिला और साथ ही एक दुःखद घटना

भी पट गई। जब पण्डित जी ने मुनीम मे रगया मांगा तो मुनीम ने चीन्हा घुस कर दिया। पण्डित जी ने डांट कर उगवो चुप रहो के लिए कहा, परन्तु यह अधिक बल से चीन्हा रहा। पण्डित जी ने थोप मे उगवे गान पर घण्ट मारा। यह घण्ट कुछ ऐसे जोर मे लगा कि मुनीम की आँखें बाहर निकल आईं। पण्डित जी की उस घटना का पश्चात्ताप बहुत दिनों तक रहा। यह था किन्नी वारण के किन्नी व्यक्ति की मारने के विरोधी थे। लाहौर मे भगत-सिंह का पीछा करते हुए पाननगिह की उन्होंने दो बार सीट जाने के लिए कहा था। इसी प्रकार गान्धीदिया के मनी एक्का मे किन्नी की बोटी-सी भी घोट नहीं आई थी। उनको तो इसका गुमान भी न था कि उनके एक घण्ट से किन्नी व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है।

कैलाशपति

दिल्ली में वकील रोड पर एक वकील श्यामजी मोहन सक्सेना रहते थे। वह कुमारी लज्जावती मुख्याध्यापिका, जालन्धर कन्या महाविद्यालय से परिचित थे। इसी महाविद्यालय की सुशीलादेवी भी स्नातिका थी, जो डिग्री प्राप्त कर कलकत्ते के एक मारवाड़ी परिवार की स्त्रियों को पढ़ाने चली गई थी। वही भगतसिंह ताहौर में साण्डर्स वध के पश्चात् उनके पास जाकर ठहरा था। लज्जावती जी भी थोड़ा-बहुत क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध रखती थी। उन्होंने श्यामजी मोहन से सुशीला जी को अपने घर में छिपा कर सुरक्षित रखने की अनुमति ले ली थी। मैं जब कानपुर से भाभी और दीदी को लेकर दिल्ली लौटा तो कुछ दिन के लिए मैंने उन दोनों को वकील साहव के मकान पर छोड़ दिया था।

चार-पाच दिन पश्चात् मैंने मुहल्ले दस्ता में एक मकान किराए पर ले लिया और वहां भाभी, दीदी और भाभी के सुपुत्र शचि को लेकर रहने लगा। यह बात लगभग २४ या २५ अक्टूबर १९३० की है। पण्डित जी का विचार भी दिल्ली आने का था, जहां वह कैलाशपति के चरित्र का अध्ययन स्वयं करना चाहते थे।

परन्तु कैलाशपति ने उस समस्या को स्वयं ही हल कर दिया और पण्डित जी को दिल्ली आने की आवश्यकता न पड़ी।

यह तो मैं पहले ही बता चुका हूं कि कैलाशपति आजमगढ़ के पोस्ट आफिस से ३,२०० रुपये लेकर भागा था और ५०० रुपये अपने पिता को

भेज शेष रुपये समेत दल के काम में जुट गया था। आरम्भ में वह उत्तर प्रदेश और दिल्ली के बीच बड़ी बनकर काम करता रहा। भगतसिंह की गिरफ्तारी के पश्चात् वह दिल्ली में ही रहने लगा था और पण्डित जी ने उसको दिल्ली दल का संचालक बना दिया था। उसने कुछ दिन मन लगाकर दल के संगठन का काम किया। मेरा दल से परिचय तो काशीराम ने कराया था परन्तु दल में पूर्णतया लाने वाला कैलाशपति ही था।

लाहौर वाले भगतसिंह पड़्यन्त्र केस में दिल्ली कमशियल स्कूल के व्यायाम के अध्यापक सूरजबली को पुलिस लाहौर ले गई थी और उसको खूब मार-पीट कर कुछ भेद मालूम करने चाहे थे। परन्तु जानते हुए भी सूरजबली ने कुछ भी बताने से इन्कार कर दिया था। पुलिस ने उसको छोड़ दिया था। जब वह दिल्ली लौटा तो दल के कुछ सदस्य उससे मिले, उनमें कैलाशपति भी था। सूरजबली मुहल्ले दस्सा के पास छत्ता मूफीजी के समीप रहता था। उसकी पत्नी चन्द्रवती भी वही रहती थी। चन्द्रवती अधिक शिक्षित नहीं थी। उसका रंग भी काला था, परन्तु छवि कुछ बुरी नहीं थी। खादी पहनती थी और पर्दा नहीं करती थी।

कैलाशपति का आना-जाना उस घर में हो गया था। उस समय वह मेरे पास हिन्दू कालेज होस्टल में रहता था और उसके सारे खर्चों का भार मेरे ऊपर ही था। वह दिन भर शहर में घूमता फिरता था परन्तु शाम को मेरे पास आ जाता था। इन्हीं दिनों उसका परिचय मास्टर सूरजबली और चन्द्रवती से हो गया था। कुछ दिनों बाद जब पण्डित जी मेरे साथ होस्टल में रहने लगे थे तो कैलाशपति ने शहर में कहीं रहने का प्रबन्ध कर लिया था। परन्तु दिन में एक या एक से अधिक बार वह मुझसे मिल लेता था। अपना खर्च तो वह मुझसे ही लेता था।

फरवरी में मुझे मोतीभारा (टाइफाइड) हुआ। पहला दौरा ३२ दिन रहा फिर एक दिन ज्वर उतर दूसरे दिन फिर से ज्वर बढ़ा, यह रिलेप्स लगभग आठ महीने मुझे सताता रहा। मैं २४ मार्च १९३० तक होस्टल में रहा। पण्डित जी पूरे समय मेरे साथ रहे और मेरी देख-भाल ही नहीं की, बरन् डाक्टर के यहां से दवा आदि भी लाते रहे। कैलाशपति भी लगभग प्रत्येक दिन आता रहा। २४ मार्च को मैं अपनी बहन के घर चला गया और पण्डित जी होस्टल में दल के एक दूसरे सदस्य भवानीसिंह के साथ रहने लगे। परन्तु वह हर रोज मुझे देखने आते थे। मेरी बहन, बहनाई तथा भांजो और अन्य मित्रो

से भी उनका परिचय हो गया था। वहन से तो वह अरहर की दाल और चावल की दावत प्रायः खाने रहते थे। कैलाशपति भी मुझे देखने घर बारबार आता रहा। यह क्रम जून १९३० तक चलता रहा। उन दिनों कैलाशपति कहा रहता था मुझे पता नहीं।

गाडोदिया मनी एक्शन के पश्चात् पण्डित जी मुझे कश्मीर भेज कर स्वयं बानपुर चले गए। कश्मीर से लौटने पर मुझे पता चला कि कैलाशपति ने औगढवाली गली, बाजार सीताराम में मास्टर हरिद्वारीलाल के मकान का ऊपर का भाग किराए पर ले लिया था जहाँ वह चन्द्रवती को साय लेकर रह रहा था। मैंने मास्टर सूरजवली से बात की तो पता चला कि चन्द्रवती मास्टर जी को छोड़ कैलाशपति के साथ ही रहने लगी है। आखिर मास्टर जी तो घनहीन थे। वेवल २५ या ३० रुपये मासिक वेतन था। उधर कैलाशपति के पाम दल का रुपया था। १७० रुपये मासिक ता केवल मेरे से लेता था। ३० रुपये मासिक चतुर्भुज डिडवानिया से लेता था। उसके तो रुपया लेने के अनेक सूत्र थे जो मुझे मालूम न थे। मुझे यह बात बुरी लगी और मैं एक दिन लगभग प्रातः १० बजे उसके घर गया। मैंने जो दृश्य अपनी आँखों से देखा दुखी भी हुआ और क्रोध भी आया। उन दोनों को अपने आने का परिचय दे जब मैं कमरे में गया तो देखा कि एक ओर खादी की लगभग २०-२५ साड़ियाँ तथा ४०-५० जम्फर रखे हुए थे। मैं चकित रह गया और दुख से मेरी आँखों के आगे अंधेरा छा गया। मेरे दुखी होने का कारण था।

मैं जब हिन्दू कालेज दिल्ली में लैक्चरर नियुक्त हुआ था तो मेरा मासिक वेतन २०० रुपये था। साय ही मैं कालेज के होस्टलो का सुपरिण्टेण्डेंट भी बनाया गया था। होस्टल में मुझे एक बड़ा और दो छोटे कमरे दिये गये थे और कालेज की ओर से एक नौकर। अविवाहित होने के कारण मैंने खाने का अलग प्रवन्ध न किया, होस्टल के मैस में ही खाता था। उसी मैस से कैलाशपति और पण्डित जी का भोजन आता था। मैं केवल एक ही समय भोजन करता था और खाने का मासिक खर्च केवल लगभग १२-१४ रुपये आता था। मैं अपनी दूसरी आनश्यकताओं के लिए दस रुपये रख शेष दल को कैलाशपति द्वारा दे दिया करता था। खादी पहनने के कारण कपड़ों पर खर्च बहुत ही कम था और साइकिल हाने से गाड़ी भाड़ा भी बच जाता था। कैलाशपति ने मुझे बताया था कि दल के सदस्यों के लिए (केवल दिल्ली में) लगभग ४००-५०० रुपये मासिक की आय की आवश्यकता है। मैं यही समझ

इससे पहले मैं लिख चुका हूँ कि यशपाल ने लार्ड इरविन की ट्रेन पर बम छोड़ा था परन्तु सी० आई० डी० किसी भी व्यक्ति को उस काण्ड के सबध में पकड़ने में असमर्थ रही थी। पुलिस के भारी इनाम की घोषणा का परिणाम भी व्यर्थ जा रहा था। स्काटलैण्ड यार्ड के चार आफिसर भी इसी सम्बन्ध में २-३ महीने भारत में रहकर खाली हाथ यू० के० लौट गए थे। तत्पश्चात् यू० के० से मि० पील तफ्तीश के लिए भारत भेजे गये थे। उनका नाम, पता तथा उनकी पद्धति को छिपाये रखा था। यहाँ तक कि उनके पास दो टेलीफोन होते हुए भी डाइरेक्टरी में उनका नाम भी नहीं था। परन्तु कानपुर में वीर-भद्र तिवारी को उसका नाम शम्भूनाथ सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर से मालूम हो गया था। पता भी उसने रोशनारा रोड का कहला भेजा था। कोठी थी 'दिलकुश'। वह पता कैलाशपति को मालूम था। उसने कर्मसिंह को पील को सूचना देने के लिए कहा। हो सकता है कि वीरभद्र तिवारी और कैलाशपति दोनों ने ही दल को छोड़ने का निश्चय कर लिया था और तिवारी ने कैलाशपति को पील का पता इसीलिये भेजा हो कि जिससे वह अपने आपको उसी के हवाले सौंप दे।

कैलाशपति सुलतानी गवाह

कैलाशपति ने अपने पकड़े जाते समय सरदार कर्मसिंह से चन्द्रवती को न पकड़ने के लिए कहा था। थाने पर ले जाने पर भी उसने यही प्रार्थना की थी कि चन्द्रवती को छोड़ दिया जाए। यह उसकी कमजोरी थी जिसका पुलिस ने पूर्णतया लाभ उठाया। उसने बजाए छोड़ने के चन्द्रवती के साथ दुर्व्यवहार करने की धमकी दी। और यदि मि० मूरजवली का कथन ठीक है जो उन्होंने मुझे बाद में बताया था कि पुलिस ने सत्य ही उसके साथ कैलाशपति के सम्मुख कुछ दुर्व्यवहार किया भी था। उस रात दोनों को दो पृथक् कमरों में बन्द कर दिया गया। दूसरे दिन पील कैलाशपति से वही मिला। कैलाशपति ने उनसे वादा किया कि यदि वह चन्द्रवती के विरुद्ध कोई अभियोग न चलाए और उसको छोड़ दें तो वह पुलिस को दल का पूरा भेद बता देगा। पील ने आश्वासन दिया कि वह चन्द्रवती को छोड़ ही नहीं देगा उसको कैलाशपति के साथ पूर्ण स्वाधीनता के साथ रहने देगा, यदि वह पुलिस को त्रातिवारी दल के नव भेद बता देगा तथा दल के सदस्यों को पकड़वाने में सहायता करेगा। कैलाशपति ने यत्न दिया और दल प्रचार दिल्ली पड़्यन्त्र बेस का आरम्भ हुआ।

मुझे कैलाशपति के पकड़े जाने की सूचना भवानीमिह ने २६ अक्टूबर

को प्रातः काल दी। मैंने उसी दिन पण्डित जी को कानपुर लिख दिया और उनके आदेश की प्रतीक्षा करने लगा।

धनवन्तरी की गिरफ्तारी

बैलाशपति के पकड़े जाने के समय मैं दीदी, भाभी तथा शशि को साथ ले मुहल्ला दस्सा में रह रहा था। वहाँ सूचना आई कि धनवन्तरी और सुखदेव राज लाहौर से पहली नवम्बर को दिल्ली आकर हमसे मिलेंगे। वे दोनों पण्डित जी से मिलने कानपुर जा रहे थे। उन दोनों को हमने एक अन्य स्थान पर मिलने को लिख दिया था। ये दोनों बजाय पहली नवम्बर के ३१ अक्टूबर को ही दिल्ली पहुँच गये। वे हमारे निवास स्थान से अनभिज्ञ थे, चादनी चौक में घूमने लगे। धनवन्तरी लाहौर से फरार था और पुलिस ने उसके पकड़ने के लिए इनाम भी घोषित कर दिया था। उस पर आरोप था कि उसने लाहौर में अक्टूबर मास में लारेन्स गार्डन में अब्दुल अजीज़, सुपरिण्टेण्डेण्ट सी० आई० डी० लाहौर पर गोली चलाई थी। यह सत्य होते हुए भी पुलिस के पास प्रमाण कुछ नहीं थे। लाहौर की सी० आई० डी० के कुछ आदमी धनवन्तरी की तलाश में दिल्ली आये हुए थे। उनमें से एक ने धनवन्तरी और सुखदेव राज को चादनी चौक घण्टाघर के पास पहचान लिया और उनका पीछा करने लगा। यह दोनों भी ताड़ गये और फतेहपुरी की ओर तीव्र गति से चलने लगे। उसने भी अपनी गति बढ़ा दी। अब दोनों ने भागना शुरू किया। सी० आई० डी० का आदमी भी उनके पीछे 'चोर, पकड़ो चोर' चिल्लाता हुआ भागा। चादनी चौक में चलने वाले अनेक लोग, 'चोर-चोर' की ध्वनि सुनकर उन दोनों का पीछा करने लगे। उनमें एक सिपाही भी था। धनवन्तरी ने दोनों को घिरा देख कर जेब से पिस्तौल निकाल पीछा करने वाले एक सिपाही पर गोली चला दी। गोली सिपाही की छाती पर लटकी हुई सीटी से टकरा दूसरी ओर चली गई और सिपाही को कुछ भी चोट नहीं लगी। परन्तु धनवन्तरी अब घिर चुका था और जनता ने उसे चोर समझ कर मारना शुरू कर दिया था। पुलिस ने इतने में उसे पकड़ लिया।

इस भगड़े और गडबड का लाभ उठा सुखदेव राज चुप से खिसक सामने की डाक्टर हरीराम (रायसाहब) की दुकान में जा छिपा। धनवन्तरी का गिरफ्तार करने के पश्चात् पुलिस सुखदेव राज की खोज में लगी। लोगों ने उनको हरीराम की दुकान में घुसते हुए बताया। पुलिस ने डाक्टर हरीराम से पूछा कि कोई व्यक्ति उनकी दुकान में तो नहीं छिपा है। डाक्टर साहब ने

सचमुच नहीं देखा था। पुलिस ने उनसे अपनी दुकान देखने के लिए कहा। डाक्टर देखने के लिए एक किवाड़ के पीछे झुके तो सुखदेव राज को पिस्तौल खींचे हुए देखा। डाक्टर साहब डर गए और लौटकर पुलिस से कह दिया कि उनकी दुकान के अन्दर कोई व्यक्ति नहीं है। सुखदेव राज दुकान के अन्दर के जीने से ऊपर चढ़ कुछ छतों को पार कर डाक्टर युद्धवीरसिंह के मकान में जा पहुंचा और वहां से रात को निकल नई दिल्ली चला गया। दूसरे दिन वह हम लोगों से आ मिला।

धनवन्तरी को पकड़े जाने के बाद दिल्ली की कोतवाली में बन्द रखा गया, जहां उसके बड़े भाई विद्यानन्द जी उससे मिले। धनवन्तरी को २ नवम्बर को ही कुछ सिपाहियों से मालूम हो गया कि कैलाशपति ने भेद खोलने शुरू कर दिये हैं। उसने विद्यानन्द द्वारा हमें सन्देश भेजा कि हम पण्डित जी को सतर्क कर दें।

भाभी तथा दीदी विद्यानन्द और सुखदेव राज के साथ लाहौर चली गईं। मैंने मकान का सारा सामान मास्टर मूरजबली को दे दिया और स्वयं कानपुर जा पण्डित जी को दिल्ली का तथा कैलाशपति के भेद खोलने का समाचार दिया। पण्डित जी को कैलाशपति के सुनतानी गवाह बनने का फिर भी विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने वैशम्पायन को बनारस विद्याभूषण का पता लाने के लिए भेजा। यह वही विद्याभूषण था जिसने दिल्ली में गाडोदिया स्टोर में मनी एक्शन में भाग लिया था और इसका पता दिल्ली में केवल कैलाशपति को ही मालूम था। वैशम्पायन ने बनारस से लौटकर बताया कि विद्याभूषण पकड़ लिया गया है। पण्डित जी के मुख से उस समय केवल ठण्डी सास के साथ यही शब्द निकले “ठण्ड ने हग भरा”। (कैलाशपति का दल का नाम शीतल था और शीतल ठण्डे को कहते हैं)।

पंडित जी के अंतिम दिनों में मैं उनके साथ

जब वैशम्पायन ने विद्याभूषण के पकड़े जाने की सूचना दी थी उस समय मैं पंडित जी के साथ कानपुर में विठ्ठलजीत पार्क (कचहरी के सामने) में बैठा हुआ था। मैंने देखा पंडित जी उस समय बहुत ही दुखित हुए थे और क्यों न होते? जिन पर उनको अटूट विश्वास था, जो दल के नेता थे और अन्य युवकों को दल में भर्ती करते थे, वे पकड़े जाने पर धोखा दे जाते थे। बिहार का फणीन्द्र घोष, लाहौर का सुखदेव और अब दिल्ली का कैलाशपति एक से एक जिम्मेदार व्यक्ति थे। फणीन्द्र घोष लाहौर पड़्यन्त्र केस में सुलतानी गवाह बन गया था, सुखदेव ने पकड़े जाने के पश्चात् ही भेद खोल दिये थे और कैलाशपति तो मानो इस समय की वाट जोह रहा था कि कब वह पकड़ा जाए और कब वह दल के भेद खोले। उधर यशपाल और वीरभद्र तिवारी का काण्ड भी उनके सामने ही था, अभी तीन ही महीने तो उस काण्ड को हुए बीते थे। पंडित जी का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था।

परन्तु यह पहला आघात तो न था। पंडित जी के जीवन में तो आरम्भ से ही ऐसे आघात एक के बाद एक आते रहे थे और वह क्षण भर विचसित हो फिर अपने जीवन के ध्येय की पूर्ति में लग जाते थे। अब भी उन्होंने साह्स नहीं छोड़ा, हिम्मत नहीं हारी। दल के पुनर्संगठन करने में व्यस्त हो गए।

नहर पार कच्छी की गद्दी पर मनी एक्शन से पूर्व उन्होंने रामचन्द्र मुसद्दी के यहा रहना छोड़ दिया था। श्री मुसद्दी और श्रीमती मुसद्दी दोनों ही

कांग्रेस सत्याग्रह में जेल चले गये थे। उन्होंने सिविल लाइन्स में ही ठीक पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ट के आफिस के सामने डाक्टर मुरारीलाल रोहतगी के मकान की बाहर वाली बँठक किराए पर ले ली थी। डाक्टर माहव का उनसे परिचय न था इसी कारण बँठक किराए पर लेने में कोई अनुविधा नहीं हुई। वैशम्पायन और मैं पण्डित जी के साथ उसी बँठक में रहने लगे। सोने की ज़मीन का बिस्तर था और गाना पढीस के हलवाई के यहाँ से एक समय पूरिया आ जाती थी। रुपये के अभाव में दूसरे समय पानी पीकर निर्वाह करते थे। पण्डित जी के पास यदि वही से पैसे आते भी तो वह तुरन्त पिस्तौल या रिवाल्वर खरीद लिया करते थे। वह ठेठ जाडो में भी मलमल की धोती, आधी बाहों वाली लट्ठे की बमोज़ और ठण्डा कोट तथा पाव में चप्पल पहना करते थे। मैंने एक बार उनको कम से कम एक गर्म बपड़ा बनवाने के लिए कहा तो उन्होंने अपने गन्दूब में से १६ ग्विन्टर, पिस्तौल, बन्दूक तथा राइफल निकालकर कहा, यह फिर कहा में आएंगे ? यह भी बोले 'जब तक ३७ और दल के सदस्य ठण्डे बपड़ों में अपना निर्वाह कर रहे हैं मैं गर्म बपड़े बँने पहन सकता हूँ।' मैं चुप हो गया। मेरे पास भी तो केवल एक गर्म कोट ही था। वह उनके लिए छोटा पड़ता था और मुझमें उनमें वही अधिः सहन शक्ति थी।

पति के साथ थाने में रहने दिया। उसके बयानों से दल के सदस्यों की गिरफ्तारियां होने लगीं। पण्डित जी को एक और कठिन समस्या का सामना करना पड़ा। वह था दल के साथियों को उनके पुराने स्थानों से हटा नए स्थानों पर ले जाना। परन्तु पण्डित जी तो अभी तक इतने साधन एकत्रित नहीं कर पाए थे।

इधर वीरभद्र तिवारी को जब इस बात का ज्ञान हो गया कि आजाद को उसके विश्वासघात का पता हो गया है तो वह कांग्रेस सत्याग्रह में जेल चला गया जहां उस समय रामचन्द्र मुसद्दी भी थे। दोनों एक दूसरे से भली भांति परिचित थे और वीरभद्र मुसद्दी के घर प्रायः आया-जाया करता था।

वीरभद्र फैजाबाद जेल में था जब कैलाशपति पकड़ा गया और उसने पुलिस के सम्मुख अपने बयान देने आरम्भ कर दिये थे। उसने वीरभद्र का भी पूरा कच्चा चिट्ठा उनके सामने रख दिया था।

मुसद्दी के कथनानुसार सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर उससे फैजाबाद जेल में मिला। मुसद्दी के ही अनुसार नौटबाबर भी वहीं उससे मिला।

शीघ्र ही तिवारी को फैजाबाद जेल से मलक्का जेल इलाहाबाद में भेज दिया गया वहां उस समय वैशम्पायन भी जेल में था।

एक दो दिन बाद ही वीरभद्र को जेल से छोड़ दिया गया।

एक ओर कैलाशपति के बयानों के आधार पर दल के छोटे से छोटे सदस्य पकड़े जा रहे थे दूसरी ओर उसके बयान वीरभद्र के सम्बन्ध में होते हुए भी उसको जेल से छोड़ दिया गया।

यशपाल लाख प्रयत्न करें कि वीरभद्र ने आजाद के प्रति विश्वासघात नहीं किया किन्तु उनके पास भी वीरभद्र को छोड़ने और उसको गिरफ्तार न करने के कोई भी कारण या सुभाव नहीं हैं।

सालिग्राम शुक्ल की मृत्यु

कुछ समय पहले साहोर पडवन्न केस के अभियुक्त सुरेन्द्र पाण्डे केस से छूट कानपुर आ गए थे। उन्होंने पण्डित जी से सम्पर्क भी बना लिया था। सालिग्राम शुक्ल, जिसका दल का नाम 'पहाड़ी' था, कुछ दिनों से फरार था और पुलिस उसको गिरफ्तार करने में प्रयत्नशील थी। वह भी पण्डित जी से मिलता रहता था। पण्डित जी ने दल की दिनचर्या के अनुसार निश्चय किया कि पहली दिसम्बर १९२० को वह, वैशम्पायन, सुरेन्द्र पाण्डे, मैं और सालिग्राम शुक्ल कानपुर से दस पन्द्रह मील दूर जंगल में शूटिंग का अभ्यास करेंगे। पाण्डे

और शुक्ला से कहा गया कि वे पाचो का खाना लेकर प्रात साढे पाच बजे ग्रीन पार्क के सामने मिलें ।

पाण्डे और शुक्ला के पास साइकिलें थी । हम तीनों के पास केवल दो ही साइकिलें थी । हम तीनों ठीक साढे पाँच बजे ग्रीन पार्क न पहुँच पाये । १५ मिनट या कुछ अधिक देर हो गई थी । अभी अन्धेरा ही था । मैं साइकिल दाई ओर चला रहा था । दूसरी साइकिल पण्डित जी चला रहे थे और वैशम्पायन उनके पीछे बैठा था । जब हम ग्रीन पार्क से मिले हुए ऑक्जिलियरी फांस के आफिस के सम्मुख से जा रहे थे तो मैंने सड़क के किनारे एक लाश देखी और पण्डित जी को चेतावनी दी । पण्डित जी ने मुझे तीव्र गति से साइकिल चलाने को कहा । दस गज आगे मैंने दाई ओर एव साइकिल, एव टिफिन कैरियर और कपडे का अपना थैला, जिसमे तीन रिवाल्वर पडे थे, देखा । यह थैला पाण्डे ने मुझमे ३० नवम्बर को लिया था । मैंने साइकिल धीमी की, इस विचार से कि कम से कम थैला उठा लू । परन्तु पण्डित जी ने भाप लिया और तेज स्वर मे बोले, “साहब तेज करो अपनी साइकिल की, क्या तुम नहीं जानते कि हम सबके जीवन खतरे मे हैं ।” मैंने कहा, “भाई साहब, हमारे तीन रिवाल्वर व्यर्थ जा रहे हैं ।” उन्होंने कहा, “कोई परवाह नही ।” और हम तीनों इस प्रकार एक साथी की लाश को देखते हुए भी वही छोड़कर चले गये । यदि उस समय हम कुछ ओर वरते तो कदाचित अनुचित ही होता और हम तीनों के जीवन खतरे मे पड जाते । कारण, सहायक सेना के बगले मे एव गोरा राइफल लिए हुए पहरा दे रहा था और वह हम लोगो को भी देख रहा था । यदि हम वहा ठहरते, स्वते या थैला आदि उठाते तो उसको सन्देह हो जाता । कुछ दूर ही हमे पुलिस का एक दस्ता उसी ओर जाता हुआ मिला । अच्छा हुआ कि न तो उसने हमको रोका और न ही टोका वरना इतिहास कुछ दूसरा ही होता और पण्डित जी की जीवनी भी कोई दूसरा ही लिखता ।

गुरेन्द्र पाण्डे से मिलने पर पता चला कि सानिग्राम शुक्ला की मृत्यु किस प्रकार हुई थी । गुरेन्द्र पाण्डे और शुक्ला लगभग प्रात सवा ५ बजे ग्रीन पार्क के सामने पहुच गये थे । वे दोनों वही अन्धेरे मे गडे होकर हम तीनों की प्रतीक्षा करने लगे । उसी समय पुलिस का एक दस्ता वहा से गुजरा । वह दस्ता डी० ए० बी० बालेज के होस्टल मे बाप्रेस द्वारा चलाये हुए आन्दोलन के सम्बन्ध मे किसी विद्यार्थी की तलाशी लेने जा रहा था । दस्ते का नेता एक ब्रिटिश सहायक मुपरिण्टेण्डेंट पुलिस था । वैशम्पायन के अनुसार पुलिस डी० ए० बी०

कालिज के होस्टल में गजानन राय पोद्दार को पकड़ने गई थी। उसका नाम और पता बैलाशपति ने पुलिस को बताया था परन्तु पोद्दार तो वहाँ से पहले ही लपककर चला गया था। शम्भूनाथ, इन्स्पेक्टर सी आई डी तथा अन्य आठ-दस पुलिस के सिपाही थे। उनमें से किसी के भी पास किसी प्रकार का शस्त्र नहीं था। क्योंकि उनको कांग्रेसियों से किसी भी प्रकार की आपत्ति का भय नहीं था। सी आई डी सब-इन्स्पेक्टर शम्भूनाथ शुक्ला को पहचानता था और वह भी जानता था कि कुछ दिनों से शुक्ला छिपकर काम कर रहा है। वह जब इन दोनों के समीप से गुजरा तो उसने शुक्ला को पहचान लिया। उसने हसते हुए कहा, "वहो शुक्ला जी, इतने दिन कहा रहे" और वह कहते-कहते पीछे की ओर हो उसने शुक्ला को कौली भर कर पकड़ लिया और तीव्र स्वर में बोला, "यह सालिग्राम शुक्ला क्रान्तिकारी है और कई महीनों से भागा हुआ है।" शुक्ला ने अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया पर सफल नहीं हुआ। पाण्डे कुछ दूर खड़ा भौचक्का हो इस दृश्य को देख रहा था, शुक्ला ने उच्च स्वर में कहा सगयी होशियार (Comrade Beware)। उसने किसी न किसी तरह अपने हाथ ढीले कर अपनी दाईं जेब से रिवाल्वर निकाल लिया और बाहे पीछे से जकड़ कर पकड़ी हुई होते हुए भी सामने की ओर दो फायर किये। एक गोली तो एक सिपाही के लगी जो मर गया और दूसरी गोली पुलिस के सहायक सुपरिण्टेण्डेंट के घुटने में लगी। इसी कशमकश में पाण्डे अपनी साइकिल पर बैठ वहाँ से चलता बना। जब शुक्ला पुलिस के वश में न आ पाया तब ब्रिटिश सहायक सुपरिण्टेण्डेंट, सहायक सेना के गोरे के पास जाकर बोला कि पुलिस ने एक भयंकर डाकू को पकड़ रखा है, जो उन पर गोली चला रहा है। उसने उस गोरे सिपाही से 'डाकू' को गोली मारने के लिए कहा। उस गोरे ने पीछे से शुक्ला के कान पर राइफल की नली रख गोली चला दी। शुक्ला की मृत्यु तत्क्षण हो गई और पुलिस ने उसकी लाश उसके रिश्तेदारों को न दे स्वयं ही जला दी।

पाण्डे के जाने के पश्चात् का शेष काण्ड शम्भूनाथ ने मुझे मेरी गिरफ्तारी के पश्चात् बताया था। उसने तो यह भी बताया था कि शुक्ला का हृदय बहुत बड़ा था और सहायक पुलिस सुपरिण्टेण्डेंट शुक्ला की वीरता की बहुत प्रशंसा करता था। उस दिन शाम को कानपुर निवासियों ने तिलक पार्क में एक मार्गदर्शन सभा में शुक्ला की वीरता तथा कर्तव्यपरायणता की प्रशंसा की और उसकी मृत्यु पर शोक का प्रस्ताव पास किया।

मेरी गिरफ्तारी

२३ नवम्बर १९३० तक मैं और वैशम्पायन पण्डित जी के साथ डाक्टर मुरारीलाल वाले भवन की बैठक में रहते रहे। उस दिन पण्डित जी ने मेरा प्रबन्ध नवाबगज में श्री श्रीवास्तव के यहाँ कर दिया। यह सज्जन गणेश-शंकर विद्यार्थी के पुत्र 'दैनिक प्रताप' के सहायक सम्पादक थे। वहाँ मैं पुस्तकों का अध्ययन करने लगा। पण्डित जी ने मुझे गनकाटन और पिक्रिक एसिड बनाने का फार्मूला अध्ययन करने के लिए भी आज्ञा दी। मैं प्रतिदिन दस साढ़े दस बजे नवाबगज से नगर में आकर गयाप्रसाद पुस्तकालय में शाम के पाँच बजे तक पढ़ता रहता था।

३० नवम्बर की रात को मैं पण्डित जी के साथ ही सोया। दूसरे दिन सालिग्राम शुक्ला की मृत्यु-काण्ड के पश्चात् पण्डित जी ने मुझे नवाबगज लौटने के लिए कहा और आदेश दिया कि उनकी आज्ञा बिना नवाबगज न छोड़ूँ। परन्तु मुझसे उस आज्ञा की अवहेलना हुई। मैं उसी सन्ध्या तिलक पार्क की नभा में गया। उस सभा में अचानक मुझे केशवदेव गुप्ता मिला। यह गुप्ता उससे पहले मुझे अजमेर में मिला था।

मैं अपने सम्बन्ध में इस पुस्तक में कुछ लिखना नहीं चाहता। यह जीवन कथा पण्डित जी की है, मेरी नहीं। परन्तु केशवदेव गुप्ता के सम्बन्ध में कुछ लिखना ही पड़ रहा है, वरना पण्डित जी की जीवनी का अन्तिम भाग में न लिख पाऊँगा। पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

वाक्यारी क्षेत्र के मुगविरो में से एक शिवचरणलाल भी था जो उसने

पदचातू मथुरा तथा अजमेर में निवचरणलाल शर्मा के नाम से रहता था। इस निवचरण का सम्बन्ध काकोरी पट्टमन्त्र केस में था। वह उम अभियोग में सम्निशण कागणों से अभियुक्त नहीं बताया गया था। दल के पास मन्त्र थे कि उसने दल के प्रति विश्वासघात किया था। उमका कोई निर्वाह साधन न होने हुए भी वह मथुरा तथा अजमेर की कांग्रेस कमेटियों का सम्भाषण को गया था। उमको अपने जीवन का सर्व्व भय था कि किसी दिन कोई क्रान्तिगारी उमको गोली न मार दे। इस कारण वह कुछ दिन मथुरा टहरता था और कुछ दिन अजमेर। दोनों ही स्थानों पर वह पुलिस तथा सी० आई० सी० से छिप कर मिलता रहता था। पण्डित जी उसको भलीभाँति जानते थे और उनको उसके मथुरा तथा अजमेर आने जाने का तथा उसका कांग्रेस की नेतागिरी का हाल अच्छी तरह ज्ञात था।

सितम्बर १९३० में पण्डित जी ने मुझे बानपुर बुलाकर एक ३८ बोर का रिवातवर और छ गोलिया दी और कहा कि मैं अजमेर जाकर निवचरणलाल शर्मा को गोली मार दू। साथ ही यह भी कहा था कि उमको मारने से पहले मैं अजमेर से दल के सभी सदस्यों को बाहर भेज दू जिससे उन पर सन्देह न हो और वे पकड़े न जा सकें। इनमें मदनगोपाल, गुरदत्त और रामचन्द्र नरुदि बापट भी थे। विमलप्रसाद जैन को मुझे मदनगोपाल से मिलवाने के लिए साथ भेजा। मुझे आदेश था कि निवचरणलाल शर्मा को मार कर यदि मैं बच सकू तो ठीक करना पुलिस से लड़ते हुए वही अपनी जान दे दू।

मैं सितम्बर के तीसरे सप्ताह में विमलप्रसाद जैन का साथ ले अजमेर पहुँचा। वहाँ विमल के एक मित्र श्री बालकृष्ण कौल बीमें का काम करते थे और कांग्रेस में भी भाग लेते थे। हम दोनों उन्हीं के यहाँ जाकर ठहरे। उनका निवासस्थान स्टेशन के समीप ही बचहरी रोड पर था। थोड़ी देर बाद विमल मुझे मदनगोपाल से मिलाने उसके फार्म पर ले गया। (यह वही मदनगोपाल था जो लाहौर तथा दिल्ली पट्टमन्त्र केसों में सुलतानी गवाह बन गया था परन्तु दिल्ली केस में उसने मुझे पहचान कर आखो-आखो में इशारा कर दिया था कि वह मेरा अजमेर वाला भेद नहीं खोलेगा)। वहाँ मैंने उसको अपनी अजमेर यात्रा का अभिप्राय बताया और उससे निवचरणलाल शर्मा को पहचनवाने का प्रबन्ध करने को कहा। मैं उससे यह भी पूछा कि दल के और कितने सदस्य अजमेर में हैं जिनको अजमेर से बाहर भेजा जाए। उसने मुझे दोपहर को एक बन्द कोठी में बुलाया। यह कोठी बगरहट्टा के नाम से ली हुई थी। फरनीचर

भी किराए पर लिया हुआ था। न कोठी का किराया दिया जाता था और न ही फरनीचर का। बाहर से उसमें सदैव ताला लगा रहता था जिससे न मातृक भक्त ही कुछ बोल सके और न ही फरनीचर का मालिक किराया पा सके या फरनीचर ही उठा सके। पीछे से भार लोगों ने एक कमरे को खाल रखा था और उसी रास्ते से उस कोठी को लगातार प्रयोग में ला रहे थे।

जब मैं विमल के साथ दोपहर की उस कोठी पर पहुँचा तो वहाँ मदनगोपाल के अतिरिक्त तीन व्यक्ति और थे जिनमें एक केशवदेव गुप्ता था। मैंने अपना परिचय विज्ञान के पृथ्वीसिंह जी के नाम से दिया और उनको अपनी यात्रा का कारण बताया। यह निश्चित हुआ कि सन्ध्या समय केशवदेव मुझे शिवचरण को रेलवे स्टेशन पर दिखा देंगे। शर्मा प्रत्येक दिन सन्ध्या समय स्टेशन पर घूमन जाता था। उसी रात सभी सदस्यों को अजमेर से बाहर चला जाना था और विमल को दिल्ली लौटना था। उनके अजमेर छोड़ने के पश्चात् सुअवसर पाकर मुझे शर्मा की गोली मार देनी थी। मैंने अपना रिवाजवर उसी कोठी की एक अलमारी में सुरक्षित समझकर रख दिया।

केशवदेव को मुझे उसी कोठी पर शाम को छ बजे मिलना था। जब विमल और मैं निर्धारित समय पर कोठी पहुँचे तो वहाँ केवल मदनगोपाल उपस्थित था। कोई आघ घण्टे बाद केशव भी आ गया और साधारणतया बताया कि उसने बाजार में सुना है कि पुलिस न शिवचरण को पकड़ लिया है। केशव के माथे पर किसी प्रकार का भी चिन्ह न देखकर मेरा माया टनका और मुझे उस पर सन्देह हुआ। मैंने उससे कहा कि वह स्टेशन जाकर पक्का मासूम करके आए कि शिवचरण की गिरफ्तारी की सूचना में कितनी सत्यता थी। जब वह चला गया तो मैंने विमल को उसके पीछे भेजा। थोड़ी ही देर बाद विमल लौटकर आया कि केशव समीप ही एक चाय की दुकान पर बैठा चाय पी रहा है और वहीं में वह लौट रहा है। मैंने मदनगोपाल को भी मतर्क कर दिया। विमल के आने के पाँच मिनट बाद ही केशव ने लौटकर कहा कि यह स्टेशन गया था और वहाँ उसने अपनी आँखों से शिवचरण को श्रुति लौक-अप में देखा।

मैं तो सतर्क हो गया था। उसने साधारण स्वर में कहा कि मेरा अजमेर आने का अभिप्राय तो अब सफ़्त होगा नहीं क्योंकि न मैं एक-दो दिन ठहर कर अजमेर तथा पुनर्कर की मंर करूँ। मैं केशव को दूसरे दिन उसी कोठी पर आठ बजे आने के लिए बहारा दिया किया। यह सब जान मैंने इस कारण

रचा कि मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था कि केशव ने शिवचरणलाल को मेरे आने और उसको मारने की योजना बता दी थी जिससे शर्मा ने पुलिस से मिल कर अपने को गिरफ्तार करवा लिया। मेरी यही धारणा थी कि केशव मुझे भी पकड़वा देगा।

जब केशव चला गया तो उस समय लगभग सात बजे थे। अजमेर से दिल्ली के लिए आठ बजे गाड़ी चलती थी और मैं उस गाड़ी को पकड़ना चाहता था। मैंने मदनगोपाल से अलमारी में से मेरा रिवाल्वर निकालने के लिए कहा। परन्तु केशव किसी अज्ञात समय उस अलमारी में अपना ताला लगा गया था। हम तीनों ने मिलकर ताला तोड़ा और रिवाल्वर निकाल मैं और विमल सीधे कौल साहब के मकान पर पहुँचे। गाड़ी स्टेशन पर खड़ी थी, किसी न किसी प्रकार अपना बिस्तरा बाघ स्टेशन पहुँच टिकट ले गाड़ी में सामान रखने वाले बर्थ पर लेट मुह ढक कर पड़ गए और अजमेर से गाड़ी चलने के एक घंटे बाद नीचे उतरे। डर था कहीं केशव साहब स्टेशन ही घूमते-घूमते न आ जाए और हमें देख पुलिस को सूचना दे दे।

जब हम अपना बिस्तरा बाघ रहे थे तो कौल साहब घर आ चुके थे। शायद वह हमारी अजमेर यात्रा का मतलब भी ताड़ गए थे। बोले कि शिवचरणलाल शर्मा गिरफ्तार हो गया है। उन्होंने यह भी बताया कि ऐसा सुना गया है कि शर्मा को किसी व्यक्ति ने टेलीफोन पर खबरदार किया था कि उसका जीवन खतरे में है। इसीलिए शर्मा ने पुलिस को टेलीफोन कर अपने को गिरफ्तार करवा लिया है।

दिल्ली लौटने पर मैंने अपनी अजमेर यात्रा का व्योरा पण्डित जी को सूचित कर दिया था और उनके केशव से सतर्क रहने के लिए भी लिख दिया था। परन्तु होनहार था कि मैं स्वयं ही सतर्क न रह सका।

केशव मुझे १ दिसम्बर की शाम को तिलक पार्क की सभा में अवस्थित मिल गया। दोनों ने एक दूसरे को देखते ही पहचान लिया। परन्तु वह मुझे निगम न जानकर पृथ्वीसिंह (बिहार वाला) ही जानता था। वह सभा की समाप्ति से पहले ही मुझे अपने निवासस्थान पर ले गया जो रामनारायण बाजार की सिमी गली में था। उसके पास उम भवन का सबसे ऊपर वाला कमरा था।

उसने मुझे पृथ्वीसिंह के नाम से सम्बोधित कर पहले तो कुछ गप हाकी और फिर कहा कि वह कानपुर में एक मनी एक्शन करने वाला है। रुपया बहुत मिलेगा। पूर्ण प्रबन्ध हो गया है, परन्तु एक रिवाल्वर या पिस्तौल बिना

वह एकशन को कार्य रूप नहीं दे सकता। पण्डित जी ने उससे वादा किया हुआ है कि वह उसको कानपुर लौटने पर अवश्य दे देगे। पूछने पर बताया कि पण्डित जी पिछले तीन महीनों से बरेली में हैं और दो दिन पहले ही उनका पत्र उनके पास आया है जिसमें पण्डित जी ने लिखा है कि वह अभी कुछ और दिन कानपुर नहीं लौट सकेंगे। यह सब प्रत्यक्ष झूठ था। उसी प्रातः मैं पण्डित जी के साथ था। पण्डित जी बरेली गए ही नहीं थे।

केशव ने मुझमें मेरे दिनचर्या का व्यौरा पूछा तो मैं भूल कर बंठा। मैंने उसको कह दिया कि मैं प्रायः प्रत्येक दिन गयाप्रसाद लायब्रेरी में अध्ययन करने जाता हूँ। उसने मुझसे उक्त लायब्रेरी में ४ दिसम्बर को साटे ४ बजे मिलने का वादा किया।

मैं जब २ दिसम्बर को पण्डित जी से मिला तो मैंने केशव की सारी बातें उनको बता दी और साथ ही यह भी कह दिया कि मेरा अजमेर का जो उस पर सन्देह था वह अब दृढ़ हो गया है। पण्डित जी हसे। साथ ही मुझे एक रिवाल्वर और २० कारतूस दिये और कहा कि जब ४ दिसम्बर को मैं बेशव से मिलूँ तो वे उसका दे दूँ। पण्डित जी ने अपने सदैव सरल स्वभाव की भाँति केशव पर मेरे उसके विरुद्ध बहने पर भी विश्वास किया। वह तो धोखा खाकर भी विश्वास करना नहीं छोड़ते थे। कहते थे जिसने जान हथेली पर रखकर घर-बार और ऐशोआराम छोड़कर दल का सदस्य बनना स्वीकार किया है उस पर अविश्वास करना उसके प्रति घोर अन्याय करना है, जुल्म करना है। यही विश्वास एक दिन उनकी मृत्यु का कारण बन सकता है और बना भी, पर ऐसा उनके ध्यान में आ ही नहीं सकता था।

मैं ४ दिसम्बर को प्रत्येक दिन की भाँति १० बजे गयाप्रसाद पुस्तकालय में जा स्पेशल रूम में दो पुस्तकों का अध्ययन करने लगा। जाड़ा होते हुए भी मैंने अपना कोट मूटी पर टांग दिया। उसकी जेब में रिवाल्वर तथा कारतूस पड़े हुए थे। टीक साठे ४ बजे शाम को केशव तो नहीं आया, परन्तु लगभग दो गो सिपाहियों के साथ यू० पी० स्पेशल सी० आई० डी० के सुपरिण्टेण्डेंट, नाटवाकर, कानपुर के पुलिस सुपरिण्टेण्डेंट, फील्ड, डी० एम० पी० ठाकुर बसोन्नरगिह और सम्भूनाथ, इन्स्पेक्टर टीकाराम आदि अवश्य आए और मुझे पकड़े हुए को पीछे से आकर पकड़ लिया और दोनों ओर वनपट्टियों पर रिया-स्पर लगा दिए। पकड़ने के शीघ्र ही पदचात् जब नाटवाकर ने मेरा नाम पूछा तो हमने पहले कि मैं उत्तर दूँ, ठाकुर बसोन्नरगिह बोला, 'नर, भवानी गिह।'।

मैं हम दिया। नाटवावर ने कारण पूछा, मैंने कहा मेरा नाम एन० वें० निगम है। बेशरसिंह फिर बोला—No Sir, he is lying He is not Nigam He is Bhawani Singh (नहीं जनाब, यह भवानी सिंह ही है और झूठ बोल रहा है कि निगम है)। मैंने कहा, ठीक है मेरा नाम भवानी-सिंह लिप लीजिए। नाटवावर समझ गया और उसने मेरा ही नाम लिखा, भवानीसिंह का नहीं। सन्ध्या समय ठाकुर मुझे वॉण्टेन्मैण्ट पुलिस स्टेशन मिलने आया और बोला कि पुलिस को और विशेषकर, उसको मेरे पकड़ने का बहुत दुख हुआ। उनको तो बताया गया था कि मैं भवानीसिंह, पृथ्वीसिंह के नाम से घूमता फिरता हूँ और भवानीसिंह को पकड़ने पर ५०० रुपये का इनाम घोषित था। उसने यह भी कहा कि बेशरसिंह गुप्ता को भी दुख है कि उसको अब ५०० रुपये नहीं मिलेंगे। मैं इन गुप्ता जी के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानते हुए भी अधिक लिखना नहीं चाहता।

मेरे पकड़े जाने के पश्चात् पुलिस लाकअप में पण्डित जी के मुझे दो सन्देश मिले। उनमें कोई विशेषता नहीं थी। हा, इतना मुझे अवश्य मालूम हो गया था कि पण्डित जी को मुझ पर इतना विश्वास था कि मेरे पकड़े जाने के पश्चात् भी वह और वैशम्पायन डा० मुगरीलाल के मजान में ही रहते रहें।

पण्डित जी और भगतसिंह

यह तो पहले ही मैं लिख चुका हूँ कि पण्डित जी को भगतसिंह से प्रगाढ़ प्रेम था। उन्होंने उसको बचाने की योजनाएँ बनाई, परन्तु कुछ न कुछ कारणावश सभी असफल रही। भगतसिंह, राजगुरु और मुखदेव को लाहौर केम के स्पेशल ट्रिब्यूनल ने फासी का दण्ड सुना दिया। पण्डित जी को बहुत दुख हुआ। उन्होंने सुरेन्द्र पाण्डे और यशपाल को फिर से बुलाया। यहाँ मैं इतना कह दूँ कि नवम्बर के महीने में जब मैं पण्डित जी के साथ रहता था, एक दिन शाम को पण्डित जी, वैशम्पायन और मैं विक्रमाजीत पार्क में बैठे हुए थे कि यशपाल एक घोती और कुर्ती पहने हुए वहाँ आकर उनसे मिला। उसने दुःखित हृदय से कहा कि दल से निकाले जाने के पश्चात् उसकी दशा बहुत बिगड़ गई है। कई-कई बार भोजन भी नहीं मिलता। उसकी समझ में नहीं आता कि वह क्या करे। वह अब पण्डित जी के पास क्षमा-याचना के लिए आया है। पण्डित जी ने उसकी राम-कहानी सुनी, दो-चार अपशब्द कहे और उसको ५० रुपये देकर कहा कि उनके पास उससे अधिक देने की नहीं है और वह उसकी शकल देखना नहीं चाहते। यशपाल रुपया लेकर चला गया था।

दिसम्बर में मैं पकड़ा गया तो वह वैशम्पायन और सुरेन्द्र पाण्डे को लेकर ही दल की सभालने में लग गए। दिल्ली में मुसीला दीदी थी, परन्तु उनसे वह अधिक वाम नहीं ले सकते थे। शेष लगभग सभी मुख्य साथी पकड़े जा चुके थे।

भगतसिंह आदि को फासी का दण्ड सुनाया गया तो पण्डित जी को एक काम तो मिल ही गया। वह था किसी न किसी प्रकार उनकी फासी के दण्ड को रद्द कराना। उन्होंने वैशम्पायन, यशपाल और सुरेन्द्र पाण्डे को साथ लिया तथा इलाहाबाद और दिल्ली के चक्कर लगाने आरम्भ कर दिये।

यह वे दिन थे जब लार्ड इरविन और महात्मा गांधी में आन्दोलन को समाप्त करने और किसी प्रकार के निर्णय पर पहुँचने के लिए वार्तालाप हो रहा था। गणेशशंकर विद्यार्थी पण्डित जी का पूर्णतया साथ दे रहे थे और प० बालकृष्ण शर्मा की सहानुभूति भी उनके साथ थी। वे इलाहाबाद पण्डित मोतीलाल नेहरू से मिलने जाते थे और उन्हीं के परामर्श से वे दिल्ली जाकर कांग्रेस नेताओं से मिलते थे।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के कथनानुसार पण्डित जी उनसे दिल्ली में एक बार मिले थे और उन्होंने भगतसिंह को फासी का दण्ड न देने का सुझाव रखा था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उनका सन्देश महात्मा गांधी तक पहुँचाने का वादा किया था। हो सकता है कि उस समय पण्डित जी ने नेहरू जी से कहा हो कि यदि भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को फासी नहीं दी गई तो वह क्रान्तिकारी आन्दोलन (आतंकवाद) बन्द कर देंगे, परन्तु मैं नेहरू जी के उस कथन से सहमत नहीं हूँ, जहाँ उन्होंने लिखा है कि पण्डित जी ने उनसे कहा कि क्रान्तिकारी आन्दोलन उनकी एक भूल थी और अब वह उसमें विश्वास नहीं करते।

जवाहरलाल जी ने एक और बात भी लिखी है। वह यह कि क्रान्तिकारी फासिज्म में विश्वास रखते थे। मेरा दिल से सबध लगभग डेढ़ वर्ष रहा। मैं उस समय में दिल के सभी विशिष्ट नेताओं के सम्पर्क में रहा। मैंने इतिहास में एम ए किया था और दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रथम ही नहीं आया था, उस समय तक का रिकार्ड भी तोड़ा था। हिन्दू कॉलेज में भी मैं इतिहास ही का लैक्चरर नियुक्त हुआ था। मैंने एम ए में सभी इज्जत पढ़े थे। जिसमें फासिज्म भी था। मैं सभी इज्जतों को भलीभाँति समझता था। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि दिल का एक भी व्यक्ति फासिज्म में विश्वास नहीं रखता था। वे तो उसके विरोधी थे। दिल का नाम हिन्दुस्तान समाजवाद प्रजातन्त्र पार्टी उसके ध्येय का सूचक था।

असेम्बली में वम फेंकने के पश्चात् और फिर अभियोग चलाय जाने पर भगतसिंह ने जितने भी जवाब दिये थे, वह नेहरू जी ने पढ़े ही होंगे। क्या वह

फासिज्म के सूचक हूँ या उनकी ओर थोड़ा-सा भी संकेत करते हैं ? यह मेरी बुद्धि से बाहर है कि जवाहरलाल नेहरू जैसे समझदार और सुलझे हुए व्यक्ति ने यह कैसे लिख दिया ?

मोतीलाल नेहरू और स्वयं जवाहरलाल जी ने दल को कुछ रुपये से सहायता की थी, यदि वे क्रान्तिकारियों को फासिस्ट समझते तो क्या वे उनका धन या किसी और प्रकार की सहायता करते ? अवश्य वह किमी भ्रम के शिकार हो गये होंगे ।

दूसरी बात है यशपाल के सम्बन्ध में । उसने आजाद से अपने को बड़ा और समझदार पढ़ा-लिखा व्यक्ति साबित करने के प्रयत्न में सिंहावलोकन में लिख मारा कि आजाद पण्डित नेहरू को दल के सम्बन्ध में स्पष्टतया समझा नहीं पाये थे क्योंकि वह अंग्रेजी नहीं जानते थे इसलिये उसने (यशपाल ने) दूसरे दिन नेहरू जी से मिल कर उनको दल का स्पष्टीकरण कर दिया था । पण्डित जी ने तो अपनी पुस्तक में केवल आजाद का ही वर्णन किया है, यशपाल का नहीं । सत्य ही तो किसी ने कहा है कि 'जिस जंगल में सिंह नहीं रहता वहाँ गीदड़ों का ही राज्य होता है' । मेरा यह कहने का अभिप्राय यशपाल के सम्बन्ध में कोई बुराई नहीं करना है । आखिर दल से निकाल दिये जाने से पहले वह भी तो दल का एक सम्मानित व्यक्ति था और केन्द्रीय समिति का सदस्य भी । आजाद की मृत्यु के पश्चात् उसको आजाद की महानता को भुला कर अपना बड़प्पन दिखाना शोभा नहीं देता । ठीक है, वह आज भारत के बड़े और माने हुए लेखकों में से एक हैं । उसका सम्मान उसकी पुस्तकें जनता से कराती हैं । मुझे भी हर्ष होता है जब मेरे एक साथी की प्रशंसा लोग करते हैं । जब वही मेरा सम्मानित साथी अपने एक आदरणीय साथी ही नहीं बल्कि नेता को जनता की दृष्टि में गिरा कर स्वयं को ऊँचे पद पर बिठाने का प्रयत्न करता है तो मुझे और मेरे अन्य साथियों का दुःखित होना स्वाभाविक ही है । यदि मैंने इस पुस्तक में यशपाल के प्रति भूल से कोई अपशब्द लिखे हो तो वे यशपाल पर किसी प्रकार का लाछन लगाने के लिए नहीं, उसको जनता की नज़रों में गिराने के लिए नहीं बल्कि अपने दुःखित हृदय के उद्गारों को जनता के सामने रखने के लिए और आजाद की सही तस्वीर को उसके उचित स्थान पर प्रस्थापित करने के लिये ही किया है ।

नेहरू जी ने पण्डित जी का सन्देश गांधी जी तक पहुँचा दिया । गांधी

जी ने लाडं इरबिन से भी कहा, परन्तु लाडं इरबिन ने हस्तक्षेप करने में इकार कर दिया ।

इन्ही दिनों पण्डित जी ने निर्णय किया कि गुरेन्द्र पाण्डे और यशपाल रुस जाएँ और वहाँ से प्रान्तिवासी आन्दोलन की श्रियाएँ सीख कर आएँ । उन दोनों के लिए रफया भी एकत्रित करना आरम्भ कर दिया । परन्तु भाग्य में तो कुछ और ही लिखा था ।

पंडित जी की मृत्यु और वीरभद्र तिवारी

अक्टूबर १९३० तक पण्डित जी रामचन्द्र मुसद्दी के साथ उनके आर्य-समाज वाले निवासस्थान पर रहते रहे। उस मास में मुसद्दी कांग्रेस आन्दोलन में जेल गए और फतेहगढ़ जेल भेज दिए गए। उन्ही दिनों वीरभद्र तिवारी भी किसी न किसी प्रकार कांग्रेस आन्दोलन में जेल चला गया। शायद पण्डित जी को शस्त्र नहीं देना चाहता था। हो सकता है उसे यह भी सन्देह हो गया हो कि पण्डित जी किसी भी समय उसको मार या मरवा देंगे। पण्डित जी ने उससे कच्ची वाले मनी एक्शन में भाग लेने के लिए कहा था। पर एक दिन पहले ही वह जेल चला गया था। फतेहगढ़ जेल में सी आई डी के अफसर उससे बराबर मिलने आते थे। श्री रामचन्द्र मुसद्दी के कथनानुसार नवम्बर की किसी ऐसी एक मुलाकात के पश्चात्, जो शायद नाटवावर ने की थी, तिवारी ने मुसद्दी से कहा कि उसको पता चला है कि कैलाशपति पकड़े जाने के बाद ही सुलतानी गवाह बन गया है और उसने वीरभद्र तिवारी का नाम भी लिया है। वीरभद्र ने मुसद्दी के द्वारा अपनी पत्नी को एक पत्र लिखा जिसमें उसने शम्भूनाथ डी एम पो सी आई डी को मिलने के लिए फतेहगढ़ बुलवाया। (यह पत्र मुसद्दी ने पढ़ लिया था। यह उन्ही का बयान है)। शम्भूनाथ आया, दोनों की भेंट हुई और कुछ दिनों पश्चात् तिवारी मलाका जेल से छोड़ दिया गया। यह सारी कहानी मैं श्री रामचन्द्र मुसद्दी को उनके अपन ही शब्दों में निखर देना चाहता हूँ।

“जब मैं (मुसद्दी) फैजाबाद जेल में था मेरे पास वीरभद्र भी इसी जेल में था। अचानक एक दिन उनसे मिलने के लिए कोई बड़ा सी० आई० हो०

का अपसर आया जो शायद नाट्यावर था। दो-तीन दिन तक इस मुलाकात के बाद वीरभद्र परेशान हो रहे। पूछने पर पता चला कि कैलाशपति मुलतानी गवाह (अप्रूवर) हो गया है और उसने वीरभद्र का नाम भी लिया है। वीरभद्र का भविष्य क्या होगा यही बात उनकी परेशान कर रही थी। कुछ दिन बाद उसने मुझे एक बागज का टुकड़ा कुछ लिसबर इमलिए दिया कि मैं उसे किसी प्रकार मुलाकात के दरमियान में (अपनी पत्नी के साथ) अपनी पत्नी द्वारा उनके घर उनकी पत्नी को पहुँचा दूँ। वीरभद्र पर कुछ सदेह होने से मैंने वह बागज पढ़ा। उसमें उन्होंने तीन-चार लाइन अपनी पत्नी को लिखी थी "मेरी कितानें आले से हटा देना और दम्भू (दम्भूनाथ, डी एम पी. सी. आई. डी.) से कह देना मुझे जरूर मिल लें।" इसके दो-तीन दिन बाद ही फिर उनकी जेल के फाटक पर बुलाया गया और पता चला कि उनकी तबदीली हो गई है। वीरभद्र को फैजाबाद जेल से मलाका जेल ले जाया गया। उस जेल में वैशम्पायन भी था। वैशम्पायन के कथनानुसार मलाका जेल में भी सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर दम्भूनाथ वीरभद्र की पत्नी को लेकर वीरभद्र से मिला था। उसी के पश्चात् वीरभद्र तिवारी को जेल से छोड़ दिया गया था।"

(देखो इस पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट)

यह तबदीली मलाका जेल में हुई थी जहाँ से तिवारी को छोड़ दिया गया था।

तिवारी का कैलाशपति के मुलतानी गवाह बनने के शीघ्र ही बाद जेल से छूटना पण्डित जी को सन्देहजनक लगा। वह तो आशा कर रहे थे कि तिवारी पकड़ लिया जाएगा। उन्होंने वैशम्पायन, पाण्डे, यशपाल आदि सभी को तिवारी की ओर से चेतावनी दे दी। परन्तु स्वयं यही विश्वास करते रहे कि तिवारी उनको कभी धोखा नहीं देगा। परन्तु उनको अपनी मृत्यु से पहले एक और आघात लगना था। वह था वैशम्पायन की गिरफ्तारी। यह भी मैं श्री मुसद्दी के अपने ही शब्दों में लिख रहा हूँ

"मैं जेल से छूट कर कलकत्ते गया और वहाँ से लौटकर १० फरवरी १९३१ को कानपुर आया। उसी रात अज्ञानक वैशम्पायन घर आया और कहा कि मुझे सुबह ४ बजे उठा देना जिससे मैं तबड़े ही चला जाऊँ, क्योंकि वीरभद्र आपसे मिलने जरूर आएगा और मैं नहीं चाहता कि मेरा कानपुर आना उसे मालूम हो। वैशम्पायन सुबह ही चले गए और उसके कुछ देर बाद ही वीरभद्र आए। उस समय लगभग ६ बजे प्रातः काल का समय था। मैं सो रहा

था कि आकर वीरभद्र तिवारी ने पुकारा । जागकर मैंने पूछा कहो, क्या बात है । बोले आज रात को कोई मुझे पूछने या मिलने तो नहीं आया था । मैंने कहा नहीं । फिर पूछा क्या कोई साथी तुम्हारे घर ठहरा है, यह जूते किस के रखे हैं । मैंने कहा कोई भी नहीं ठहरा है और यह जूते तो मेरे हैं । इस पर वीरभद्र कमरे के भीतर आए । सब ओर अच्छी तरह से देखा किन्तु उम कमरे में तो कोई सो नहीं रहा था । देख-न्दाख कर लौट गए ।

“वैशम्पायन का दोपहर का खाना मेरे भाई शिवशंकर के यहाँ था और हम सब दो-ढाई बजे तक गप लड़ाते रहे । हम लोगों के पूछने पर वैशम्पायन ने कहा कि पण्डित जी की हमसे मुलाकात शीघ्र ही होगी । उसी दिन शाम को सुना कि वैशम्पायन कुली बाजार में पकड़े गए । हो सकता है कि यदि वैशम्पायन न पकड़े जाते तो पण्डित जी को हम लोगों के कलकत्ते से लौट आने की सूचना मिल जाती (उन दिनों पण्डित जी दिल्ली में थे) और वह कानपुर आ जाते तो शायद इतिहास कुछ और होता ।”

उधर पण्डित जी को मालूम हो गया कि गांधी जी ने लार्ड इरविन के सामने भगतसिंह आदि की मृत्यु दण्ड को रोकने का सुझाव अधिक बल के साथ नहीं रखा । उन्होंने तो केवल यही कहा था कि समस्त देश में भगतसिंह के प्रति बहुत बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हो गई है और यदि वह (महात्मा गांधी) उसके मृत्यु दण्ड को आजन्म कारावास में नहीं बदलवा सके तो सम्भव है कि कराची कांग्रेस, जो २६ मार्च को होने वाली थी, उनके विरुद्ध चली जाए और गांधी-इरविन समझौते को ठुकरा दे । उस पर लार्ड इरविन ने उत्तर दिया था कि वह कानून द्वारा किये गये निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करेगा परन्तु इतना प्रबन्ध अवश्य कर देगा कि उन तीनों को फासी कांग्रेस के अधिवेशन से पहले हो जाय । इस परमहात्मा गांधी चुप हो गये थे ।

पण्डित जी को गांधी जी के इस प्रकार के रवैये से अत्यन्त दुख पहुँचा । उन्होंने २५ फरवरी को इलाहाबाद में उन मजदूर दल के सदस्यों की, जो इस समय बाहर थे, एक बैठक बुलाई । वे लोग २५ फरवरी को दिल्ली से कालका हावड़ा रेल में इलाहाबाद गये । गांधी जब कानपुर स्टेशन पर थी तो कुछ साथियों ने वीरभद्र को बहा देखा । उन्होंने पण्डित जी को सतर्क किया, परन्तु पण्डित जी ने यह कह कर टाल दिया कि वह तिवारी से डरने वाले नहीं हैं ।

इलाहाबाद में २६ फरवरी को बैठक हुई, उसमें क्या निश्चय हुआ यह तो मुझे पता नहीं चला किन्तु यशपान और मुग़देव राज के कथनानुसार जो

उन्होंने मुझे १९३२ की जावरी में बताया था, (उन समय मेरे ऊपर दिल्ली पद्मश्री अभियोग चल रहा था और मैं बीमार होने के कारण जमानत पर था) पण्डित जी ने उन रोगी को २७ फरवरी की सुबह आठ बजे अफोड पार्क में बुलाया था। तीनों गया आठ बजे एकत्रित हुए और एक बड़े से वृक्ष के नीचे परामर्श करने लगे। दस वृक्ष से १५-२० गज दूर पार्क के अन्दर एक मड़ब थी। मड़ब के साथ ही एक नाला था जिसके द्वारा पार्क में पानी दिया जाता था। उस नाले के साथ पार्क की सीमा की दीवार थी और दीवार के बाहर एविन प्रिस्चियन कॉलेज को जाने वाली गटर थी। यह मड़ब बटटे इलाहाबाद में आती थी। ये तीनों उसी सड़क की ओर मुग किये बैठे थे।

यहां मैं यह बता दू कि जो गभा पण्डित जी ने २६ फरवरी को बुलाई थी वह कुछ परामर्शों के पश्चात् भग हो गई थी। उस गभा में क्या निश्चय किया गया था यह तो मुझे ज्ञान नहीं हो सका, परन्तु इतना सुसीला दीदी ने मालूम हुआ था कि अधिकतर सभी गदस्य अपने-अपने स्थानों को लौट गये थे केचन पण्डित जी, यशपाल और मुखदेव राज इलाहाबाद में रह गये थे। इन्हीं दोनों को पण्डित जी ने २७ फरवरी के प्रातःकाल अफोड पार्क में बुलाया था।

लगभग साढ़े आठ बजे यशपाल ने पण्डित जी को बाहर वाली सड़क की ओर सबैत कर कहा, “भैया देखो, बीरभद्र तिवारी साइकिल पर जा रहा है।” पण्डित जी ने उसे देखा और कहा, “शायद उमकी मौत उसे यहां खींच लाई है।” पांच मिनट बाद यशपाल तो साइकिल पर बैठ चलता बना और पण्डित जी मुखदेव राज से बातें करने में व्यस्त हो गए।

यहां मैं फिर एक बार रामचन्द्र मुसद्दी की सहायता ले रहा हूँ।

“२६ फरवरी की रात को मैं एक बारात में बनारस जाने के लिए कानपुर मेट्रोल स्टेशन पर अनेक वारातियों के साथ लेटा हुआ था। रात के लगभग ११ बजे मैंने देखा कोई लपेटे बीरभद्र तिवारी आ रहे हैं। उन दिनों दल के लोग उन्हें सड़क रहते थे। पास आने पर मैंने पूछा तिवारी जी कहा चल रहे हैं। उत्तर मिला यही जरा काम है। मैंने कहा घर की बारात बनारस जा रही है, कोई खास काम न हो तो चलो। बारात हो आओ। उत्तर मिला, अच्छा चले चलेंगे। गाड़ी आई वह हमारे साथ ही डिव्ये में बैठ गए।

“इलाहाबाद स्टेशन पर गाड़ी रुकी। सतर्कता की दृष्टि में लेते ही लेते

मैं डिव्वे को देख रहा था। वीरभद्र चुपके से उठे। लोई से मुह लपेट लिया और किसी से एक शब्द नहें बिना वह चुपके से उतर गए। मुझे उनका इस प्रकार चला जाना अच्छा न लगा। २८ फरवरी को प्रातः समाचार-पत्र हाथ में आया। देखा बड़े भैया अल्फ्रेड पार्क में पुलिस से लड़ते हुए जूझ गए थे। दिल बैठ गया। कानपुर आने पर बात चली तो लोगो ने बताया वीरभद्र अस्वीकार करते हैं कि वह २७ फरवरी को इलाहाबाद में थे। मैं सोचने लगा इस क्रूर संयोग को क्या कहूँ।”

मुझे अपने सूत्रों से भी पता चला था कि वीरभद्र २७ फरवरी की प्रातः इलाहाबाद स्टेशन से अल्फ्रेड पार्क होता हुआ एक कटड़े के मकान में चला गया था जिसमें ठाकुर बशेश्वरसिंह डी एस पी सी आई डी रहता था। वहाँ उसको तिवारी ने पण्डित जी के इलाहाबाद में उपस्थित होने की सूचना दी थी।

पण्डित जी की वीरगति

लगभग ६ बजे प्रातः काल का समय था। पण्डित जी उसी वृक्ष के नीचे मुखदेव राज से बातचीत करने में व्यस्त थे। देखा उनसे ३० गज की दूरी पर अन्दर वाली सड़क पर एक कार आवर ठहरी। उसमें से दो अंग्रेज और चार सिपाही नीचे उतरे। तीन भारतीयों के हाथों में बन्दूकें थी। इन सभी ने ऊपर की ओर वृक्षों की देखना आरम्भ किया और धीरे-धीरे इधर-उधर फैलने लगे। पण्डित जी उनको एवटक देख रहे थे। मुखदेव राज से बोले, शायद शिकारी हैं। फिर उन्होंने देखा कि एक भारतीय जिसके पास बन्दूक नहीं थी, कार के पीछे बैठ गया। तीन भारतीय जिनके पास बन्दूकें थी, दो ओर उनको घेर कर वृक्षों की आड़ में खड़े हो गए। पण्डित जी सतर्क हो गए। यह सतर्कता और भी बढ़ गई जब उन्होंने उस अंग्रेज को अपनी ओर बढ़ता देखा। उसका दाया हाथ उसकी कोट की पाकिट में था। पण्डित जी को आभास हो गया। उनका कोट पास ही पड़ा था जिगकी पाकिट में उनका ३२ बोर का वेल्लेस्कोट पिस्तौल था। उन्होंने आहिस्ता से कोट को गीचा और पाकिट से पिस्तौल निकालना चाहा इतनी देर में वह अंग्रेज, जो नाटवावर था, केवल १० गज दूर रह गया था। उसने एवदम से उध से हाथ निकाल पण्डित जी पर गोली चलाई और बाद में कहा, “तुम कौन हो?” गोली पण्डित जी की जाप में लगी। परन्तु गोली लगने तक उन्होंने भी अपना पिस्तौल निकाल लिया था

और उनकी गोली भी ठीक उगी मम्य चली। नाटवावर भाग कर एक वृक्ष के पीछे छिप गया। ऊपर पण्डित जी भी निमग्न कर उस वृक्ष के पीछे हो गये। परन्तु उन पर अब तीन ओर से गोलिया चल रही थी। उन्होंने तो अपना ध्येय उम अंग्रेज को ही बनाया हुआ था। तीव्र स्वर में कहते जाने ये "मैं हिन्दुस्तानी पुत्ता पर अपनी गोलिया नष्ट नहीं करूँगा।"

इस गड़बड़ में गुप्तदेव राज गोली चलाता हुआ निष्कल भागा। गोलियों की ध्वनि सुन कर लोग बड़ी सख्या में एकत्रित हो गये थे। पुलिस उनमें यही कह रही थी कि बहुत बड़ा और भयंकर डाकू है। गुप्तदेव राज भीड़ में घुस गया। वहाँ एक पुरुष की गाइडिल धीनी, उसने विरोध किया, उसने अपना रिवातवर दिखाया वह भयभीत हो गया और गाइडिल पर चेंठ रख चक्कर हो गया। यह साइडिल उसने उमके मालिक को वाद में लौटा दी थी।

ऊपर पण्डित जी पर गोलियों की बौछार जारी थी, परन्तु पण्डित जी तो नाटवावर पर घड़ाघड़ गोलिया चला रहे थे। जब नाटवावर के पिस्तौल की मेगजीन खाली हो गई तो उसने अपने पाकिट में से दूसरी मेगजीन निकालनी चाही। उसका कन्धा कुछ अंश में वृक्ष की ओट से बाहर आ गया। पण्डित जी ने तब से उस पर गोली मार दी जो उसके कन्धे में लगी। नाटवावर की फिर हिम्मत नहीं हुई कि वह अपनी पिस्तौल दोबारा भरे। उसे यह भी डर था कि वही पण्डित जी उसकी ओर से गोली न चलती देख उसके सामने आ उसको हाथ से ही न मार दें।

गोलिया चलते हुए १७-१८ मिनट हो चुके थे। ठाकुर बनेशर सिंह, जो कार के पीछे से गोली चला रहा था, नाले में उतर, पण्डित जी की बाईं ओर नरसरी के पीदों के पीछे छिप उनपर गोली चलाने लगा। पण्डित जी ने गोली का केवल धुआं देखा और उसी धुएँ पर एक गोली छोड़ दी। गोली ठाकुर साहब के जबड़े पर लगी और वह तो 'हाय मर गया, हाय मर गया' चीखता हुआ अपने दूटे हुए जबड़े को अपने हाथ में लिए हुए अपने कटड़े वाले मकान में लौट गया।

इधर २१ मिनट से गोलिया चल रही थी। पण्डित जी के पास भी मेगजीन समाप्त हो गई थी। जब उन्होंने देखा कि केवल एक ही गोली बची है, तो अपने हृदय निश्चय के अनुसार कि वह कभी जीते जी पुलिस के हाथों में नहीं पड़ेगे, उन्होंने अपनी अन्तिम गोली अपनी कनपटी पर लगा, छोड़ दी और उनकी पवित्र तथा महान आत्मा अपने नाशवान शरीर के चोले को छोड़ कर



आजाद २७ फरवरी १९३१ को अल्मोड़ा पार्क में पुलिस से लड़ते अन्तिम गोली
अपने मस्तक में चलाने के पश्चात् ।

प्रकृति के अशो मे जा मिली । छोड़ गई केवल एक नाम, जिसको स्मरण करके माताए अपने पुत्रों को कहानिया सुनाएंगी कि इस भारत देश मे सदैव ही ऐसे सुपुत्र पैदा होते रहे हैं जिनको अपने जीवन से अधिक अपने देश की स्वाधीनता से प्रेम था और जो उसकी स्वाधीनता के प्राप्त करने मे अपने सुख, अपने रिश्तेदार, अपने सगी-साथी, यहा तक कि अपने जीवन का बलिदान करते भी हिचकते नहीं थे ।

पण्डित जी की ओर से गोलिया आनी बन्द हो गई थी । परन्तु पुलिस को भ्रम था कि पण्डित जी जान कर गोली नहीं चला रहे हैं । उनका भ्रम ठीक ही था । वे जानते थे कि उनकी गोलिया पण्डित जी को नहीं लगी थी । वे यह स्वप्न मे भी नहीं सोच सकते थे कि पण्डित जी अपनी गोली से ही वीर गति को प्राप्त हो सकते थे । पुलिस ने हथियारबन्द पुलिस का जत्था बुला भेजा था । इन लोगो ने पण्डितजी को लेटा देख सोचा, यह भी कोई चाल है । उन्होने उनके मृतक शरीर को अपनी अनगिनत गोलियों का निशाना बनाया, मानो शूटिंग की प्रैक्टिस कर रहे हों । फिर भी पण्डित जी लेटे ही रहे तो वे धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़े । पण्डित जी को मरा हुआ देख उनके शव को उठाया । उनके शरीर के लगभग सभी भागो मे गोलिया लगी हुई थी परन्तु केवल एक ही गोली का निशान था जो उनकी कनपटी के पास था और वह उनकी गोलियों का नहीं था । शव को एक स्टेशन बैगन मे रख वहा से पोस्ट मार्टम के लिये ले गये । जिस वृक्ष के पीछे नाटवाबर छिपा हुआ था उसमे १९३२ मे मैंने स्वयं पण्डित जी की गोलियों के २५ निशान देखे थे । वे सभी पास-पास थे जिससे पण्डित जी की निशाने बाजी का अनुमान किया जा सकता है ।

इधर जनता को भी ज्ञात हो चुका था कि पुलिस की मुठभेड़ डाकू से नहीं वीर चन्द्रशेखर आजाद से हो रही थी । वे अधिक सख्या मे वहा जमा हो गए । इससे आगे का हाल मैं ५० शिवविनायक मिश्र के शब्दो मे उद्धृत कर रहा हूँ । मिश्र जी आजाद के सम्बन्धी थे और बनारस मे रहते थे । वही पर आजाद उनसे पहले द्वात्रावास के समय और फिर अज्ञातवास मे भी कभी-कभी मिलते रहते थे ।

मिश्र जी ने लिखा है

“२७ फरवरी सन् १९३१ को जब श्री चन्द्रशेखर आजाद इलाहाबाद के अल्फ्रड पार्क मे पुलिस से एकाकी युद्ध करके शहीद हो गये तो रात को इलाहाबाद मे एक सज्जन, जो गांधी आश्रम के कार्यकर्ता थे, मेरे पास आये ।

उनको स्व० कमला नेहरू जी ने मेरे पास भेजा था। वह रात को ११ बजे मेरे मकान पर आये और बताया कि आजाद शहीद हो गये और उनके शव को लेने के लिये मुझे इलाहाबाद बुलाया गया है। मैं उन सज्जन के साथ सबेरे चार बजे छोटी लाइन की रेल गाडी से रवाना हुआ। जूही स्टेशन से मैंने एक तार मजिस्ट्रेट (इलाहाबाद) को दिया कि आजाद मेरा सम्बन्धी है, लाश डिस्ट्रॉय न की जाये। मैं इलाहाबाद पहुँच कर आनन्द भवन गया। कमला जी से पता चला कि लाश पोस्ट मारटम के लिये अस्पताल गई हुई है। अस्पताल पहुँचने पर मैंने देखा कि लाश बन्द लारी में पुलिस के पहरे में ले जाई जा रही है। मैं सीधा डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के बगले पर गया। उसने मुझे सुपरिण्टेण्डेंट के पास भेजा। पुलिस सुपरिण्टेण्डेंट ने कहा लाश जला दी गई है। मैंने उससे कहा कि अभी-अभी मैंने लाश को लारी में ले जाते हुए देखा है, इतनी जल्दी लाश कैसे जलाई जा सकती है। तब उसने दारोगज पुलिस थाने के दारोगा को एक पत्र लिख कर दिया कि लाश त्रिवेणी पर जलाई जायगी, मुझे आजाद के सम्बन्धी के नाते उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने दी जाय।

बगले से बाहर निकलते ही पद्मकान्त मालवीय की कार दिखाई पड़ी। मैं उन्हीं की गाडी में उनके साथ दारोगज थाने गया। दारोगा जी पत्र पढ़ते ही हमारे साथ ही त्रिवेणी गये। वहाँ तो बुद्ध भी नहीं था। हम सुपरिण्टेण्डेंट के बगले की ओर मुड़े ही थे कि साइकिल पर सवार एक व्यक्ति ने हमें बताया कि लाश रसूलाबाद गंगा के किनारे गई है। जब हम रसूलाबाद पहुँचे तो चिंता में आग लग चुकी थी। हमने उनको सुपरिण्टेण्डेंट का पत्र दिखाया तब उन्होंने हमें अन्त्येष्टि क्रिया की इजाजत दे दी। पद्मकान्त जी और मैंने आग बुझाई, शरीर की खाल जल गई थी। आजाद को मैं पहचान नहीं सका लेकिन थे वही क्योंकि फरार होने पर भी लुप्त छिप कर वह वासी आते थे और उन्हें देखने का मुझे एक बार मौका मिला था।

हमने दोबारा चिंता में आग लगाई तब तब पुरुषोत्तमदास टण्डन, श्रीमती कमला नेहरू आदि भी वहाँ पहुँच गये थे। अस्थिया और बुद्ध रात में एक पोटली में बांध अपने साथ ले आया। उस दिन शहर में पूर्ण हड़ताल थी, जनता में अपूर्व उत्साह था। सायकल वाले कपड़े में बांध कर आजाद की अस्थियाँ का जलूस निकाला गया। श्री पुरुषोत्तमदास पार्क में श्री मोहनलाल गोतम की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा हुई। बुद्ध काब्रेसी नहीं चाहते थे कि आजाद के लिये हड़ताल और सभा हो, इसलिए जलूस और सार्वजनिक सभा

दोनों का ही प्रबन्ध स्टूडेण्ट्स एसोसियेशन द्वारा हुआ था। सभा में पुरुषोत्तम दास जी टण्डन, कमला नेहरू और मेरे भाषण हुए।

इस प्रकार यह महान् आत्मा भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई में अपने प्राणों की आहुति देकर जननी जन्मभूमि से उद्धार हो गया।”

शिवविनायक मिश्र के कथन की पुष्टि करते हुए ही पद्मकान्त मालवीय ने लिखा :

“यह तो मुझे मिश्र जी से ज्ञात हो ही चुका था कि कांग्रेस की अहिंसा नीति और आजाद के क्रान्तिकारी होने के नाम पर इस विषय में कांग्रेस के नेताओं ने उनकी किसी प्रकार की भी सहायता करने से साफ इन्कार कर दिया है। मैं मिश्र जी के साथ पहले कोतवाली पहुँचा और फिर दारागंज पुलिस थाने पर पुलिस ने जब सही पता न बताया तो हम रसूलाबाद की ओर चल दिये जहाँ हमने एक लाश जलती देखी। हमने पुलिस से आजाद के जले हुए शव की भस्मी ली और अम्युदय प्रेम लौट आए। रास्ते में मिश्र जी ने याद दिलाई कि पूज्य मालवीय जी की इच्छा थी कि स्वतन्त्र भारतीय सेना के महासेनापति आजाद की शान के अनुरूप ही उनका अन्तिम सस्वार होना चाहिए। मैं सोच में पड़ गया। यहाँ के कांग्रेसी नेताओं के असहयोग की बात मिश्र जी सुना ही चुके थे। विद्यार्थी सघ के जो साथी साथ थे, प्रेस पहुँचते ही उनके द्वारा मैंने एलान करवा दिया कि विद्यार्थी सघ की ओर से शहर में पूरी हड़ताल होगी, शाम को ५ बजे भस्मी का जुलूस अम्युदय प्रस से उठेगा और पुरुषोत्तमदास पार्क में सभा होगी। देखते-देखते शहर में पूरी हड़ताल हो गई। ऐसी हड़ताल कम देखी गई थी। मिठाई, खोचे और पान वाले तक ने अपना कारबार बन्द कर दिया। इक्के, तागे सब बन्द। इधर सशस्त्र पुलिस और घुड़सवारों ने जुलूस के सारे मार्ग को घेर लिया। हर दस कदम पर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। मिलिटरी भी बुला ली गई और अफवाह फैल गई कि यदि जुलूस निकला तो गाली चलाई जाएगी। मैं सीधा पुरुषोत्तमदास जी टण्डन के पास गया और उन्हें सारी परिस्थिति बतलाई। उन्होंने मुझसे कहा कि जो कुछ मैंने प्रबन्ध किया है ठीक किया है और मुझे जुलूस निकालना चाहिए और मैं स्वयं भी आऊँगा। उन्होंने सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और कहा, “राजनीतिक मतभेद में समझ सकता हूँ पर मृत्यु के साथ ही सारे मतभेद समाप्त हो जाते हैं। आजाद विशुद्ध देशभक्त थे, क्या इस पर भी किसी को मतभेद हो सकता है? मेरी हिम्मत चौगुनी बढ़ गई। जुलूस चल पड़ा। सभी लोग नगे सिर और नगे पैर

थे । आरम्भ में आदमी थोड़े थे । पर सड़क पर आते ही देखा तो गलियों में आदमी पटे पटे थे और वह पुलिस की घोड़ी-सी हरकत होते ही जुलूस में शामिल हो गये । यहाँ टण्डन जी भी सम्मिलित हो जुलूस की अगुवाई करने लगे । पुरुषोत्तमदास पार्क पहुँचते-पहुँचते जुलूस काफी बड़ा हो गया । पार्क में भी जनता पहले से मौजूद थी ।

सभा में शचीन सान्याल की धर्मपत्नी ने अपने भाषण में कहा, “खुदीराम बोस की भस्मी को लोगो ने ताबीज में रखकर अपने बच्चों को पहनाया था कि उनके बच्चे भी खुदीराम बोस की तरह बहादुर देश-भक्त बनें, मैं उसी भावना से भाई आज़ाद की राख की एक छुटकी लेने आई हूँ ।” और फिर तो राख ऐसी लुटी कि बड़ी मुश्किल से उसका कुछ अंश काशी ले जाने के लिए हम लोग बचा पाये थे शायद ! बहुत महान् थी यह सभा और इलाहाबाद ने पूज्य मालवीय जी की इच्छानुसार आज़ाद भारतीय सेना के महासेनापति की शानदार मृत्यु पर उनकी शान के अनुरूप ही उनके प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की थी ।



आठार २७ फरवरी १९३१ में आठेह पार्क में शम्भान भूमि
 में गे जाने गे पड़े

श्रद्धांजलि

यह था उस धीर का केवल दस वर्ष का जीवन । वे दस वर्ष जिसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकार की जड़ों को हिलाकर रख दिया था । दस वर्ष—जिनमें एक दिन भी उन्होंने अपने लिए न जीकर देश के लिए अर्पण कर दिए थे । इन दस वर्षों में ब्रिटिश सरकार ने लाखों रुपये व्यय कर दिए थे परन्तु पण्डित जी का पता नहीं लगा सही थी । मुझे स्मरण है कि जब मैं बानपुर में ४ दिसम्बर १९३० को पकड़ा गया था तो नाटबाबर ने मुझसे कहा था कि सरकार मेरे नाम से लन्दन में दो लाख रुपये बैंक में जमा करा देगी और मुझे चुपके से लन्दन भी भिजवा देगी, यदि मैं केवल पण्डित जी के रहने का पता भर उसकी बता दू ।

पण्डित जी अपने कर्तव्य में अत्यन्त कठोर थे । एक बार जब वह राम-चन्द्र मुसहरी के यहां ठहरे हुए थे और उनकी सटकी मुसुम जो सायद एक वर्ष की थी, पाग ही पृथ्वी पर पड़ी लेल रही थी कि पण्डित जी का पिस्तौल अचानक छूट गया । वही पड़ीसियों को सन्देह न हो जाए, उन्होंने पर के बियाटो को जोर-जोर से बजाना आरम्भ कर दिया । कुछ समय बाद जब श्री भाभी ने पण्डित जी में पूछा कि यदि उनकी सटकी मर जाती तो क्या होता तो पण्डित जी ने सरसता से उत्तर दिया, "होता क्या, मैं तुम्हारा घर छोड़ कर चला जाता और सटकी को गंगा में बहा दिया जाता ।" अपने कर्तव्य पालन के लिए ही उन्होंने दशासन को मृत्यु दण्ड देने का निश्चय किया था । उन्होंने तो अपना जीवा ही कर्तव्य पालन में अर्पण कर दिया था । यही कारण था कि एक के बाद एक

चोट खाते हुए भी और अपने घनिष्ट मित्रों तथा साथियों के मरने के तुरन्त बाद ही वह फिर दल के संगठन में सलग्न हो जाते थे ।

जहाँ एक ओर वह दृढ़ निश्चय और कर्तव्य पालन में कठोर हृदय थे वहाँ दूसरी ओर वह स्वभाव में अत्यन्त सरल तथा प्रेम करने वाले व्यक्ति भी थे । भासी में मास्टर रुद्रनारायण को अपना भाई बना उनकी पत्नी को भावज माना और उनका इस भावज से जब कभी भगडा होता तो वह 'भाई' के पास जाते । भाई भी कह देते 'मैं देवर भौजाई के भगडा में नहीं पडना चाहता, आपस में ही निपट लो ।' जब भगवानदाम माहीर के यहाँ आना-जाना हुआ तो उनकी माता को इतना प्रेम किया कि वह भगवानदास से अधिक पण्डित जी को ही अपने बेटे का मान देती थी । कानपुर में उन्होंने श्रीमती भाभी (धर्मपत्नी रामचन्द्र मुसद्दी) और मुसद्दी जी से भी ऐसा ही प्रेम किया जैसे अपने सगे भाई-बहिन से करते हैं । मेरी अपनी बहिन से भी उन्होंने सदा ऐसा ही व्यवहार रखा जैसा मैंने उसके साथ रखा था ।

परिहास भी उनमें यथा मात्रा में उपस्थित था । एक बार जब मैं होस्टल में मोतीभारा से पीड़ित था और पण्डित जी मेरे साथ ही रहते थे, हिन्दू कालेज के एक प्रोफेसर मित्रा मुझे देखने आए । वह वृद्ध अवस्था के मेरे पिता के समान थे । उन्होंने आखें मूढ़ मुझे सम्बोधित कर कहा, 'निगम, मेरी तुमसे सविनय प्रार्थना है कि इस रोग से स्वस्थ होने के पश्चात् तुम अवश्य विवाह कर लेना ।' पण्डित जी इस दृश्य को देख रहे थे । उन्होंने उसके पश्चात् अनेकों बार मुझे प्रोफेसर मित्रा की नकल कर सम्बोधित किया ।

वह साधारण बातों के लिए मनुष्य का जीवन नहीं लेते थे । उनका लक्ष्य तो ब्रिटिश सरकार को भारत से निकालना था । जब भाँसी में फरार अवस्था में रहते थे तो उनका परिचय कुछ ठाकुरों और कुछ सरदारों से हो गया था जो भासी के समीप छोटी छोटी रियासतों (ताल्लुकेदारियों) में रहते थे । वे लगभग सभी लोग पण्डित जी का असली परिचय जानते थे । जब उनमें से एक सरदार ने अपने राजा को मारने का प्रस्ताव रखा तो पण्डित जी ने इन्कार कर दिया । इसी प्रकार कानपुर के समीप मन्दिर की मूर्ति प्राप्त करने के लिए उन्होंने हत्या करने से मना कर दिया था जबकि इस एक वध से उनको दल की सहायता के लिए पर्याप्त मात्रा में रुपया मिल रहा था ।

उनके चाल-चलन के सम्बन्ध में तो मैं पुस्तक में लिख ही चुका हूँ । उसकी पुष्टि एक और घटना में होती है जो उन्होंने बताई थी । भासी के समीप

एक ताल्लुकेदारो (रियासत) में वह एक सरदार के साथ रहते थे। यह सरदार भी उनके असली रूप से परिचित था। एक दिन पंडित जी सरदार के साथ एक शूटिंग में भाग लेने के लिए गए। वहां का राजा भी आया हुआ था। वह पंडित जी की निसानेबाजी से बहुत प्रभावित हुआ और उनको अपने महल में बुलाया। पंडित जी वहां आने-जाने लगे। उस राजा को अप्राकृतिक क्रिया का व्यसन था। पंडित जी हृष्ट-पुष्ट तो थे ही। राजा का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ और उसने पंडित जी से अप्राकृतिक क्रिया करने के लिए कहा। पंडित जी कुछ वहांना बना वहांसे सरदार के घर लौटे और उसको सारी कहानी सुना। राज्य से बाहर चले गए। जब सरदार ने उनको यह कहकर रोकना चाहा कि राजा उनको धन देगा तो उन्होंने कहा, “हमारा दल आदर्शवादी क्रान्तिकारियों का दल है, देश भक्तों का दल है, आचारहीनों का नहीं है। यदि हमें पैसे नहीं मिलेंगे, तो हम लोग भूखे ही मर जाएंगे और यदि पकड़े गए तो फासी भले ही चढ़ जाएंगे परन्तु ऐसा घृणित कार्य हम लोग कभी नहीं करेंगे।”

ऐसा भी नहीं था कि सभी सरदार उनके सच्चे साथी या सहानुभूतक थे। इन्हीं सरदारों में एक ऐसा था जिसके यहां पंडित जी प्रायः अपनी फरार अवस्था में ठहरा करते थे। उसको जब यह ज्ञात हुआ कि पंडित जी के पकड़वाने से उसे दस हजार रुपए मिल जाएंगे तो उसने अपने नौकर को साथ मिला पट्यन्त्र रचा। पंडित जी को रात को ऊपर की मंजिल के मकान में सुला दिया और नौकर से कहकर कि पंडित जी भागने न पाए, स्वयं भांसी पुलिस को बुलाने चला गया। नौकर ने यह बिस्वासघात नहीं देखा गया और उसने गुप्त रूप से पंडित जी को खबरदार कर दिया। पंडित जी रात को बारह बजे पिछली लिडकी में लगभग बीस गज की ऊंचाई से पीछे खेत में कूद, रातों रात जंगल में चलकर पन्द्रह मील दूर निवृत्त हुए। उनके पास न पैसे थे और न ही बपड़े। केवल एक धोती और कमीज पहने हुए थे। हा उनका पिस्तौल उनकी घोंनी की गांठ में अवश्य छिपा था। पन्द्रह मील चलने के पश्चात् जब वह गडक पर चढ़ रहे थे और यह भी नहीं मानूस था कि वह गडक उतारो किंग ओर ले जा रही थी, उनका पीछे से एक बग के आने की ध्वनि आई। यह बग कुछ आगे जाकर रुक गई और उसमें से एक मित्र व्यक्ति बाहर आ पंडित जी की ओर चला। पंडित जी मनचं हो गए और उन्होंने मित्रोत्तर प्राप्त में से लिया। सोचा यदि पुत्रिम या आदर्श होगा तो उसे अपने बचाव में मानी मार देंगे। परन्तु जब सरदार जी उनके समीप आए तो उन्होंने

पण्डित जी को प्रणाम किया। पण्डित जी उनको पहचाने तो नहीं परन्तु प्रणाम का उत्तर प्रणाम से दिया। सरदार जी ने पण्डित जी से पूछा कि कहा जा रहे हैं इस जगल में अबेले। बोले, 'कुछ पता नहीं।' सरदार जी ने कहा कि वह कानपुर जा रहे हैं और पण्डित जी को भी आग्रह कर अपने साथ ले लिया। यही नहीं सरदार जी के पास जितने उस समय पैसे थे वह उन्होंने पण्डित जी को आग्रहपूर्वक दे दिए। यह सरदार जी पण्डित जी को भासी से जानते थे।

वेधडक होना तो पण्डित जी की आदत में शामिल था। एक बार कानपुर में जब वह बम के खोल बनाने की दो फैक्टरिया चलाने में सफल हो गए तो उन्होंने एक फैक्टरी का पता पुलिस को दे दिया। जब पुलिस वहां धावा मारने पहुंची तो आप सड़क पर खड़े उनका तमाशा देखते रहे। कानपुर के थाने में जाकर स्वयं ही अपने पकड़े जाने के इनाम का इश्तहार देख आये और दो पुलिस आफिसरों में मजाब भी कर आये।

श्रीप्रकाश जी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है, "यो तो सस्कृत छात्र समिति के सभी सदस्य प्रशंसा के पात्र थे परन्तु कार्यक्षमता और निर्भीकता में चन्द्रशेखर आज़ाद का कोई समकक्ष नहीं था।"

पण्डित जी को गाना गाने या सुनने का शौक नहीं था। समय ही कहा या उनके पास इन बातों के लिए। कभी-कभी वह उर्दू के कुछ शेर कहा करते थे। उनमें से जो मैंने उनके मुह से सुने थे, वे यह थे—

"दूटी हुई बोतल है टूटा हुआ पैमाना ।

सरकार तुम्हें दिखा देंगे ठाठ फकीराना ॥"

"शहीदों की चिताओं पर पड़ेंगे خاک के ढेले ।

वतन पर मिटने वाला का यही बाकी निशा होगा ॥"

"दुश्मन की गोलियों का हम सामना करेंगे ।

आज़ाद ही रहे हैं आज़ाद ही मरेंगे ॥"

और सचमुच ही वह जब तक जीवित रहे आज़ाद रहे और आज़ाद ही मरे। मैं इस वीर की छोटी सी जीवनी को कवि इयामपाल सिंह की आहुति से ही समाप्त करना चाहता हूँ। उन्होंने १९५५ में ठीक ही लिखा था—

"स्वतन्त्रता रण के रणनायक अमर रहेगा तेरा नाम ।

नहीं जरूरत स्मारक की स्मारक है खुद तेरा नाम ॥

स्वतन्त्र भारत नाम के आगे जुड़ा रहेगा तेरा नाम ।

भारत का जन मन गण ही अब बना रहेगा तेरा घाम ॥"



२१ वर्षीय आचार्य माहन्तर हटनारायण व घर नोंतो म

परिशिष्ट-१

आजाद की मृत्यु को लगभग ३८ वर्ष बीत गये । विश्वासघात ही उनकी मृत्यु का कारण था, इसमें तो किसी का भी मतभेद न था और न अब ही है । यह विश्वासघात किसने किया था, इसमें भी १९३१ या १९३२ में लगभग सभी साधियों की नजरें वीरभद्र तिवारी पर ही थी । कानपुर में तो उस पर दो बार इसी कारण गोली भी चलाई गई थी परन्तु दोनों ही बार वह बच गया था ।

कुछ समय पश्चात् दल तितर-बितर हो गया और कारागार से छूटने पर सभी सदस्य अपने-अपने धन्यो में लग गये ।

परन्तु तिवारी जो कानपुर छोड़ उरई चला गया था, जानता था कि विश्वासघात का कलक उसके ही भाथे था । कई वर्ष बीत जाने के पश्चात् उसने श्री लल्लनप्रसाद व्यास द्वारा अपने बचाव में एक लेख लिखवाया । यह तो असम्भव-सा ही प्रतीत होता है कि व्यास जी ने स्वयं ही यह लेख लिखा हो । इस लेख का उत्तर वैशम्पायन (अब स्वर्गीय) ने हिन्दुस्तान साप्ताहिक में दिया ।

शायद यह मामला यही समाप्त हो जाता परन्तु यशपाल ने वैशम्पायन के उत्तर में धर्मयुग में पांच लेख लिखे जिनमें लेखक ने तिवारी को निर्दोष ही ठहराने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि अन्य नौ-दस साधियों के नाम लेकर उनपर सन्देह प्रकट किया । इन लेखों में उसने अधिकतर पुलिस आफिसरों के बयानों पर ही विश्वास किया है ।

यशपाल के इन लेखों का मेरा उत्तर 'दिनमान' ३ और १० दिसम्बर १९६७ में छपा था। वह लेख इस परिशिष्ट में दिया जा रहा है—केवल उतने ही भाग को जो इस पुस्तक में अन्यत्र नहीं आया है।

यशपाल का मेरे लेख का उत्तर 'दिनमान' १४ अप्रैल १९६८ में छपा था। उसने मेरे लेख में उठाये गये १२ कारणों में से एक का भी उत्तर न दे मेरे लेख को मिथ्या ठहरा दिया था। जो पाठक यशपाल के उत्तर को पढ़ना चाहें वे 'दिनमान' को देख सकते हैं।

वीरभद्र तिवारी का भी लेख 'दिनमान' २१ अप्रैल १९६८ में छपा था, वह मैं इस परिशिष्ट में दे रहा हूँ। इससे पाठकगण को मालूम हो जायगा कि उमरे कयन में कितना तथ्य है। यह बात तो उसने मान ही ली है कि २७ फरवरी १९३१ को प्रातः काल वह इलाहाबाद में था और साइकिल पर भी गया था। परन्तु उसने यह नहीं लिखा कि कैलाशपति के वयानों के पश्चात्, जिसमें उसके सम्बन्ध में भी लगभग पूर्ण उल्लेख था, वह पकड़ा क्यों नहीं गया, हालांकि शिवचरण पकड़ा जा चुका था। उसने यह भी नहीं लिखा कि जेल से छूटने के पश्चात् वह अज्ञात हो गया था।

इसी परिशिष्ट में 'दिनमान' में छपे कुछ पत्र भी दिये जा रहे हैं।

[चन्द्र शेखर आज़ाद की मृत्यु : जिम्मेदारी किसकी]

अमर क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आज़ाद इलाहाबाद में जिस गोलीकाण्ड में मारे गये उसके पीछे किस व्यक्ति का विश्वासघात था, आज़ाद के भूतपूर्व सहयोगी इस सवाल को पुराना पड़ गया मानते थे। लेकिन उपन्यासकार यशपाल ने अपनी एक लेख माला द्वारा वीरभद्र तिवारी की सफाई की पैरवी करके इस भुर्दा सवाल को फिर जिला दिया। इतना ही नहीं, अपने मुक्किल की सफाई में उन्होंने अपने कुछ उन सहकर्मियों को भी लाञ्छित किया जिन्हें क्रान्तिकारी समाज सम्मान की दृष्टि से देखता रहा है। इन व्यक्तियों में विश्वनाथ वैशम्पायन भी थे, जिनकी मृत्यु कुछ दिन पहले रायपुर में हो गई। (देखिए 'दिनमान' १२ नवम्बर, १९६७)।

यशपाल की लेखमाला 'धर्मयुग' में छपी थी और यह उचित था कि उनके अभियोगों का खण्डन या कि मामले से सम्बद्ध अन्य सामग्री का प्रकाशन वहीं हो, लेकिन आज़ाद, यशपाल और वैशम्पायन के सहयोगी नन्दकिशोर निगम (दिल्ली पब्लिशर्स वेस) का लेख 'धर्मयुग' में नहीं छपा। इससे पहले स्वयं वैश-

म्पायन ने यशपाल के लेख के जवाब में एक लेख धर्मयुग को भेजा था, लेकिन वह लौटा दिया गया, ऐसी सूचना हमें मिली है। क्योंकि विश्वासघात का अभियोग न केवल कुछ दिवगत व्यक्तियों की प्रतिष्ठा से सम्बन्ध रखता है, बल्कि त्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास के सदस्यों में एक महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक प्रश्न है, इसलिए श्री निगम का सस्मरणात्मक लेख एक दस्तावेज के रूप में यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। —स०]

कुछ दिन हुए, मैंने यशपाल लिखित चार लेख धर्मयुग में पढ़े थे। इन लेखों का अभिप्राय इस बात को प्रमाणित करना था कि वीरभद्र तिवारी पण्डित जी की मृत्यु के लिए दोषी नहीं हैं। यशपाल ने तो कितने ही ऐसे नाम गिना दिये जिनमें से किसी को भी पण्डित जी की मृत्यु के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

यशपाल मेरे साथी रहे हैं। २२ दिसम्बर १९२६ से नवम्बर १९३० तक वह मेरे घर पर भी आते रहे हैं। उसके बाद भी हमारा परस्पर स्नेह बना हुआ है, यद्यपि कई वर्षों तक हम एक-दूसरे से मिल नहीं सके। कम-से-कम मेरे हृदय में तो उनके लिए उतना ही प्रेम है जितना पहले था। मेरे पास यह सन्देह करने का भी कोई प्रमाण नहीं है कि उन्हें मेरे प्रति कोई नाराजगी है। अतः जो कुछ मैं लिख रहा हूँ उसमें उनका विरोध करने की भावना लेश-मात्र भी नहीं है। मेरा तो यही प्रयत्न है कि जिस प्रकार उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है, उसी प्रकार मैं उन तथ्यों को लोगों के सामने रख दूँ जो मुझे मालूम हैं।

जिन दिनों आज़ाद मेरे साथ रहते थे उन दिनों कभी-कभी वह अपने त्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध में अपने अनुभव और अपनी आपबीती सुनाया करते थे। तीन महीने के भीतर उन्होंने अपनी लगभग सारी आपबीती सुना दी थी। इन सबको मैंने लिपिबद्ध कर लिया है, जो पुस्तकाकार आज़ाद की जीवनी के रूप में शीघ्र ही पाठकों के सामने आ जायगी। इस लेख में तो मैं केवल वीरभद्र के सम्बन्ध में ही लिखना चाहता हूँ। ऊपर जो कुछ लिखा गया वह केवल इस बात को प्रमाणित करने के लिए कि मेरा सम्बन्ध दल के लगभग सभी प्रमुख नेताओं से था, जिनमें यशपाल भी आते हैं और जो कुछ मैं लिख रहा हूँ वह केवल सुना-सुनाया या मतगठन नहीं है।

वीरभद्र को मैंन पहली बार २० दिसम्बर, १९२६ को देखा था, जब वह होम्टन के मेरे कमरे में बुलाई गई बैठक में भाग लेने के लिए बानपुर में

आये थे। परन्तु उस समय उनसे मेरा परिचय नहीं हुआ था। दूसरा सम्पर्क पाच महीने बाद हुआ था, जब कानपुर से उन्होंने मुझे सन्देश भेजा था कि इंग्लैण्ड से नॉटबाबर नामक एक उच्च सी. आई. डी. अधिकारी वाइसरॉय की ट्रेन पर बम फेंकने के मामले की जांच करने दिल्ली आये हैं और रोशनआरा रोड पर 'दिलकुशा' बगले में ठहरे हुए हैं। तीसरी बार उनकी चर्चा अगस्त १९३० के अन्त में कैलाशपति ने मुझसे की और बताया कि आजाद ने यशपाल को कानपुर बुलाया था और तिवारी पर यशपाल को गोली मार देने का भार सौंपा था, परन्तु तिवारी ने गोली मारने के बजाय यशपाल को सावधान कर दिया, जिससे यशपाल दिल्ली लौट आये और फिर लाहौर चले गये। कैलाशपति ने मुझे यह भी बताया कि आजाद अब यशपाल से इतने नाराज नहीं हैं जितने तिवारी से।

चौथी बार तिवारी के सम्बन्ध में मुझे स्वयं आजाद ने सितम्बर १९३० में कानपुर में बताया था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में मुझसे कहा था कि तिवारी धोखा दे रहा है और वह दल का काम छोड़कर दल के भेद सी. आई. डी. इन्स्पेक्टर शम्भूनाथ के द्वारा उच्च सी. आई. डी. अधिकारियों तक पहुंचा रहा है। जब मैंने उनसे कहा कि क्यों नहीं तिवारी को खत्म कर देते, तो उन्होंने उत्तर दिया कि यू. पी. के दल के सदस्यों और आश्रय तथा रुपये देने वालों के नाम व ठिकाने केवल तिवारी को मालूम हैं, जिन्हें वह बताता नहीं। मैं धीरे-धीरे नाम व ठिकाने मालूम कर रहा हूँ। जैसे ही मुझे पर्याप्त जानकारी हो जायगी, तिवारी को एक पल भी जीवित नहीं रहने दूंगा। परन्तु वह दिन कभी नहीं आया और दल के साथ तथा आजाद के विचारों से द्रोह करने वाला आज भी जीवित और खुशहाल है, समाज में सम्मानित भी है। परन्तु जिस व्यक्ति ने १५ वर्ष की आयु से २३ वर्ष की आयु तक देश की स्वाधीनता की लड़ाई में अपने को भोक दिया और लड़ते-लड़ते अपना जीवन निछावर कर दिया, आज उसका नाम लेने वाला भी कोई नहीं है। मुझे तो आजाद का वह शेर याद आ जाता है जो वह बार-बार गुनगुनाया करते थे—

शहीदों की चिताओं पर पड़ेंगे खाक के ढेले।

बतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशान होगा ॥

मैं यशपाल के इस कथन से सहमत हूँ कि वीरभद्र तिवारी किसी भी 'एक्शन' में भाग लेकर अपने को फँसाना नहीं चाहता था। यही कारण था कि जब आजाद ने उसे यशपाल को गोली मारने का आदेश दिया तो उसने

आदेश का पालन करने की वजाय यशपाल को आगाह करते हुए कानपुर से वापस लौटा दिया। आज़ाद ने जब-जब उसे किसी 'ऐक्शन' में शामिल करना चाहा, उसने कोई-न-कोई बहाना बना दिया। पता नहीं ऐसा वह स्वतः की प्रेरणा से किया करता था या सी० आई० डी० इस्पेक्टर शम्भूनाथ के कहने पर। हो सकता है कि आरम्भ में उसने स्वतः की प्रेरणा से ही ऐसा किया हो, लेकिन जब कैलाशपति ने पुलिस को अपना बयान देना शुरू किया तो तिवारी को पुलिस का साथ देने में ही अपनी भलाई दिखाई दी हो। वरना क्या कारण था कि कैलाशपति के बयानों के बाद भी वह फरार नहीं हुआ और पुलिस ने उसे गिरफ्तार भी नहीं किया। उसके सामने लाहौर पड़्यन्त्र केस के सुखदेव का उदाहरण था जिससे यही निष्कर्ष निकलता था कि यदि उसने पुलिस का साथ नहीं दिया तो या तो उसे फांसी दे दी जायेगी या कैलाशपति का सामना करना पड़ेगा, जिसके लिए वह तैयार नहीं था।

मैं यशपाल के इस कथन को तर्कसंगत नहीं समझता कि यदि बीरभद्र को रुपये ही का लालच था तो उसके सामने कितने ही ऐसे अवसर आये जब वह दल के किसी भी प्रमुख व्यक्ति को गिरफ्तार करवा कर रुपया प्राप्त कर सकता था। मेरी तो यह धारणा है कि अक्टूबर के बाद जब उस ने सी० आई० डी० का साथ देना शुरू किया तो वह रुपये के लोभ से ऐसा नहीं करता था, बल्कि अपनी जान बचाने के लिए।

यशपाल इस बात से सहमत होंगे कि जितने भी पड़्यन्त्र अभियोगों में दल के सदस्य सरकारी गवाह बने, वे पकड़े जाने से पहले दल का काम ईमानदारी से करते थे। पकड़े जाने पर अपने गैर-कानूनी आचरणों के लिए दंडित किये जाने के भय से अथवा रुपये या स्त्री के लालच से वे सरकारी गवाह बन जाते थे। इस स्थिति में पहुँचने से पहले भी यदि वे चाहते तो दल के कितने ही सदस्यों को पकड़वा कर रुपया कमा सकते थे। लेकिन प्रान्तिवारी दल में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं। यदि पकड़े जाने से पहले दल के अन्य सदस्य पुलिस से स्वयं नहीं मिलते थे और दल को घोखा नहीं देते थे तो बीरभद्र तिवारी से हो, जो दल में एक सम्मानित स्थान रखता था, ऐसे आचरण की आशंका कैसे की जा सकती थी। यशपाल के कथनानुसार बीरभद्र को लोभ नहीं भय था। इसमें आगे मैं यह भी कहना चाहूंगा कि जब कैलाशपति ने गिरफ्तारी के बाद पुलिस को अपना बयान दिया, जिसमें बीरभद्र तिवारी के सम्बन्ध में भी मब कुछ बता दिया गया था, तो बीरभद्र के सम्मुख दो ही रास्ते थे—या तो हम

लोमो के साथ वह भी दिल्ली पड़्यन्त्र अभियोग में अदालत के कटघरे में खड़ा होता या अपनी जान बचाने के लिए पुलिस का साथ देता। आज़ाद के साथ उसका सम्बन्ध पुलिस को मालूम हो गया था। वह वीरभद्र को केवल एक ही शर्त पर छोड़ सकती थी कि वह आज़ाद को पहचानवा दे।

यशपाल ने अपने लेख में कहा है कि ठाकुर बशेश्वर सिंह, डी० एस० पी०, सी० आई० डी० आज़ाद को पहचानता था और शायद उसी ने २७ फरवरी १९३१ को अल्फ्रेड पार्क में आज़ाद को पहचाना था। मैं यशपाल को केवल इतना बता दू कि नवम्बर के अन्त में एक दिन मैं, वैशम्पायन और आज़ाद कानपुर के रेलवे स्टेशन के न० १ प्लेटफार्म पर किसी काम से गये हुए थे। उसी समय ठाकुर बशेश्वर सिंह हमारे सामने आया। हमारे समीप से ही उसके गुजर जाने के पश्चात् आज़ाद ने कहा, “यह साला बशेश्वर सिंह है, जो मेरे पीछे पड़ा हुआ है। मैं जब चाहूँ इसे मार सकता हूँ, लेकिन मैं इसे गोली से मार कर पैसे ज़ाया नहीं करूँगा। मैं तो इसे किसी दिन छुरे से मारूँगा।” इससे स्पष्ट है कि बशेश्वर सिंह आज़ाद को नवम्बर के अन्त तक पहचानता नहीं था। फिर दो ही महीनों में वह आज़ाद को कैसे पहचान गया?

मैं यशपाल के इस कथन से भी सहमत नहीं हो सकता कि फरवरी १९३१ में सनत ? ने पुलिस को बताया था कि सोहन एक बड़े व्यक्ति का नाम है। पुलिस को तो नवम्बर में ही कैलाशपति ने दिल्ली में बता दिया था कि सोहन यशपाल का नाम था। इसी प्रकार यशपाल ने कहा है कि वीरभद्र के विचार में वैशम्पायन ने पुलिस को भगवतीचरण की मृत्यु का भेद बता दिया था। यशपाल ने वीरभद्र की राय बताते हुए यह भुला दिया कि जब वैशम्पायन जनवरी, १९३१ में पकड़ा गया था, उस समय तक तो कैलाशपति पुलिस को लगभग दो सौ पृष्ठ का बयान दे चुका था और सभी भेद खुल चुका था। कैलाशपति के ये बयान आज भी तारीखवार उपलब्ध हैं और यशपाल उन बयानों को पढ़ कर सत्य जान सकते हैं। और यह भी तो सम्भव है कि वीरभद्र ने स्वयं यह भेद पुलिस को बता दिया हो और नाम वैशम्पायन का लगा दिया हो। मैं तो यशपाल के लेख से चकित हो गया कि वीरभद्र तिवारी पर से सन्देह हटाने के लिए उन्होंने अनेक नाम गिना दिये कि अमुक-अमुक व्यक्तियों का नाम आज़ाद की मृत्यु के सम्बन्ध में लिया जा रहा था। अपनी बात की पुष्टि के लिए उन्होंने एक रिटायर्ड पुलिस अफसर की राय का भी ज़िन्न कर दिया। ‘मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त’ वाला मामला सामने आ जाता है।

मेरे सम्बन्ध में यशपाल का कथन अधिकतर ठीक नहीं है। मैं उनकी जानकारी के लिए अपनी गिरफ्तारी की घटना यहां संक्षेप में लिख रहा हूँ।

सालिग्राम शुक्ला की मृत्यु १ दिसम्बर, १९३० को हुई थी जिसका उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ। कानपुर के नागरिकों ने उसे श्रद्धांजलि देने के लिए उसी सन्ध्या को तिलक पार्क में एक आम सभा की। मैं भी उसमें गया। वहां मुझे दल का एक सदस्य मिला जिससे सितम्बर में अजमेर में जान-पहचान हुई थी। वहां से वह मुझे अपने साथ रामनारायण बाज्जार के उस मकान में ले गया जहां वह ठहरा हुआ था। उसने मुझसे फिर मिलने की इच्छा प्रकट की। मैंने उसे बताया कि मैं प्रतिदिन गयाप्रसाद लाइब्रेरी के स्पेशल रीडिंग रूम में १० बजे से शाम के ५-साढ़े ५ बजे तक अध्ययन करता हूँ। उसने मुझसे ४ दिसम्बर को सायं साढ़े ४ बजे उस पुस्तकालय में मिलने का समय निश्चित किया। रोज की तरह उस दिन भी मैं १० बजे पुस्तकालय पहुंचा और अध्ययन करने लगा। कमरा बन्द और गरम था। मैंने कमरे की खूटी पर अपना कोट टांग दिया जिसकी जेब में एक रिवाल्वर था। ठीक साढ़े चार बजे पीछे से दो पुलिस अफसरों ने मुझे जकड़ लिया। मैं थोड़ा-सा हिला ही था कि एक अग्रेज पुलिस अफसर ने मेरे माथे से अपना रिवाल्वर सटा दिया और कहा कि यदि मैं ज़रा भी हिलूंगा तो वह गोली मार देगा। जब मैं खड़ा किया गया तो मैंने देखा कि उस पुलिस दस्ते में दो अग्रेज और पन्द्रह-सोलह भारतीय अफसर तथा अन्य पुलिस कर्मचारी थे। उन अग्रेज अफसरों में एक तो नाटंबाबर था और दूसरा कानपुर का पुलिस सुपरिंटेंडेंट फील्ड। हिन्दुस्तानी अफसरों में सी० आई० डी० का डी० एस० पी० ठाकुर बशेश्वर सिंह, इस्पेक्टर शम्भूनाथ और सी० आई० डी० का डिप्टी इस्पेक्टर टीकाराम थे। गिरफ्तार कर के वे लोग मुझे पुस्तकालय के बड़े हॉल में ले गये। नाटंबाबर ने मेरा नाम पूछा। मैंने कहा, एन० के० 'निगम'। ठाकुर बशेश्वर सिंह बोला, 'नहीं साहब, यह भ्रूठ बोल रहा है। इसका नाम भवानी सिंह है।' नाटंबाबर ने फिर मुझसे मेरा नाम पूछा तो मैंने फिर सही-सही अपना नाम बता दिया। नाटंबाबर ने ठाकुर की ओर बड़ी नज़र से देखा। ठाकुर, बोला, 'आइ ऐम सॉरी सर।' (मुझे क्षमा कीजिए)।

वे लोग मुझे जब अपने साथ नीचे ले गये, तो मैंने देखा कि लगभग दो सौ पुलिस के सिपाहियों ने लाइब्रेरी को घेर रखा था। यह सतर्कता शायद १ दिसम्बर को शुक्ला से हुई मुठभेड़ के कारण की गयी थी। नाटंबाबर और

फील्ड पुलिस सुपरिंटेंडेंट मुझे अपनी कार में कानपुर छावनी के पुलिस स्टेशन पर ले गये और वहाँ बन्द कर दिया। दो दिन लगातार नाँटबाबर मेरे पास आकर दल के भेद लेने की कोशिश करता रहा, परन्तु असफल रहा। तीसरे दिन ठाकुर बशेश्वर सिंह आया और सब भवानी सिंह का भेद खुला।

ठाकुर ने आते ही मुझसे क्षमा मागी और बोला, "मिस्टर निगम, मुझे दुःख है कि मैंने आपको पकड़वाया मुझे तो मेरे मुखविर ने यही बताया था कि तुम भवानी सिंह हो। अब मैं भी अपने अफसरों के सामने बुद्ध बना और मुखविर को भी ५०० रु० नहीं मिले। आप समझ तो गये ही होंगे कि वह मुखविर कौन है।" उसका अभिप्राय उसी व्यक्ति से था जिसने मुझ से ४ दिसम्बर को शाम के साढ़े ४ बजे गयाप्रसाद पुस्तकालय में मिलने को कहा था। मुझे सात दिन तक पुलिस हिरासत में रखा गया। तीन आने रोज दोनों समय के खाने और धाव पानी के मिलते थे। जब पुलिस और सी० आई० डी० मुझ से कुछ भी मालूम करने में असमर्थ रहे तो सातवें दिन—शनिवार—की रात को लगभग ८ बजे मुझे कानपुर जेल भेज दिया गया। वहाँ आते ही मेरे पाव में बेडिया डाल दी गयी और एक कोठरी में अकेले बन्द कर दिया गया। इस अवस्था में मुझे वहाँ एक मास तक रखा गया। कोई अभियोग नहीं चलाया गया, जैसा कि यशपाल ने लिखा है। एक महीने बाद मुझे दिल्ली भेज दिया गया। स्टेशन से मुझे सीधे कचहरी ले जाया गया। कचहरी खुलने से पहले ही लगभग ६ बजे मैं बेहोश हो गया और जब तीन बजे के बाद मुझे होश आया तो मैंने अपने को जेल की एक कोठरी में पाया।

दिल्ली पड्यन्त्र अभियोग लगभग दो वर्ष चला और अन्त में फरवरी १९३३ के आरम्भ में अभियोग वापस ले लिया गया और १६ फरवरी १९३३ को कानपुर में आर्म्स ऐक्ट के अंतर्गत मुझे दो वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गयी। मैंने अपनी सजा अधिकतर 'सी' क्लास में, एक कालकोठरी में काटी। पाव में बेडिया पड़ी रहती थी। दो वर्ष बाद बनारस सेंट्रल जेल से रिहा होकर मैं दिल्ली चला आया।

मैंने अपने सम्बन्ध में इसलिए लिखा, क्योंकि यशपाल ने मेरी गिरफ्तारी तथा दिल्ली ले जाये जाने से पहले सजा मिलने की जो बात लिखी है वह असत्य है और गलत सूचनाओं के आधार पर लिखी गयी है। यह भी सम्भव है कि ३७ वर्ष पुरानी घटना का विवरण प्रस्तुत करते समय स्मृति विभ्रम हो गया हो। यही बात वैशम्पायन की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में भी कही

जा सकती है। परन्तु मुझे उनकी गिरफ्तारी के सम्बन्ध में कुछ भी मालूम नहीं, इसलिए यशपाल के बयान का उत्तर तो वैशम्पायन ही दे सकते थे और उन्होंने दे भी दिया है जिसे मैं वैशम्पायन की मृत्यु के सम्बन्ध में अपने लेख में प्रस्तुत करूँगा। एक बात और। मैंने यशपाल का सिंहावलोकन पढ़ कर ऐसा महसूस किया है मानो १९२८-१९३० के क्रान्ति दल के सबसे बड़े नेता यशपाल ही थे। आजाद भी उनके बाद ही आते थे। दल के साथ मेरा सम्पर्क स्थापित होने में पहले दल में यशपाल की क्या स्थिति थी मैं नहीं कह सकता, परन्तु दिगम्बर १९२९ से लेकर ४ दिसम्बर १९३०—अपनी गिरफ्तारी—तक तो मैंने यशपाल की स्थिति इसके विपरीत ही पायी थी। यशपाल को भी इस बात का ज्ञान है कि उस समय मेरा सम्पर्क दल के लगभग सभी उच्च नेताओं से था। वे मेरे होस्टल में और बाद में मेरे घर पर अक्सर आते रहते थे। यशपाल स्वयं भी कितनी ही बार आये थे। मैं समझता हूँ कि यशपाल मेरे इस मन से महमत होंगे कि उस समय तो दल के सबसे बड़े नेता आजाद ही थे। उन्होंने ही यशपाल को मृत्यु-दण्ड देने का निर्णय किया था। उन्होंने ही मृत्यु-दण्ड घापम लेकर यशपाल को दल से निकाल दिया था और कम-से-कम ४ दिगम्बर १९३० तक तो उन्हें दल में वापस नहीं लिया गया था। उसके पश्चात् क्या हुआ उससे मैं पूर्णतया अनभिज्ञ हूँ अतः यशपाल के घपन को ही मैं नहीं मानता हूँ।

अब मैं ये कारण बताऊँ जिनसे—कम-से-कम मुझे तो पूरा विद्वान्त है—कि आजाद की मृत्यु का कारण केवल धीरभद्र तिवारी का विद्रोहात्मकता ही था।

(१) धीरभद्र तिवारी तब यहाँ में दल का एक प्रमुख सदस्य, यन्त्रि नेता था। दल के लगभग सभी सदस्यों ने सभी-से-सभी विगी-न-विगी 'ऐक्यता' में भाग लिया, परन्तु धीरभद्र तिवारी ने हमेशा बहाने बना कर अपने को गुरुशिर रखा।

(२) जब आजाद ने यशपाल को जानपुर् मुखाया था तो यशपाल को गोली मारने का काम उन्होंने धीरभद्र को सौंपा था। लेकिन उसने दल के नेता आजाद के साथ विद्रोहात्मकता किया और भेद बना कर यशपाल को पारस दिग्गी सौंपा दिया।

(३) गो० आर्द० शी० इन्दुवर्मा सम्प्रदाय धीरभद्र तिवारी के यहाँ के साथ बर्तन बदल में ही रहता था और तिवारी तथा उनकी पत्नी के साथ सभी सन्तुष्ट मिलता था।

(४) आजाद ने जब तिवारी से यू० पी० में दल के सदस्यों के नाम पते पूछे तो उसने किसी-न-किसी बहाने टाल दिया। यही नहीं, उसने पाम दल के रिवाजवर और पिस्तौल आदि जो थे उन्हें देने से भी उसने इन्कार कर दिया।

(५) कैलाशपति ने दिल्ली में गिरफ्तार होने के बाद जब पुलिस को घ्योरेवार बयान देना शुरू किया तो नवम्बर के पहले सप्ताह में उसने तिवारी के सम्बन्ध में लगभग सब कुछ बता दिया था। फिर भी न तो पुलिस ने तिवारी को गिरफ्तार किया और न ही वह घर छोड़ कर भागा।

(६) अक्टूबर-नवम्बर में आजाद के साथ 'ऐक्शन' में भाग लेने से वचने के लिए जब तिवारी कांग्रेस आन्दोलन में शरीक होकर फैजाबाद जेल चला गया तो दाम्भूनाथ तिवारी उससे मिलने दो बार जेल में गया था। यह घटना कैलाशपति के बयान देने के बाद की है।

(७) तिवारी ने रामचन्द्र मुसद्दी के द्वारा फैजाबाद जेल से एक गुप्त पत्र अपनी पत्नी को भिजवाया। उसके बाद ही नॉटबाबर फैजाबाद जेल में आकर तिवारी से मिला। तत्पश्चात् तिवारी को जेल से रिहा कर दिया गया।

(८) वैशम्पायन की गिरफ्तारी के दिन प्रातः तिवारी मुसद्दी के घर गया और पूछा कि क्या वैशम्पायन वहाँ है? जाहिर है कि यदि वैशम्पायन वहाँ होता तो मुसद्दी के घर में ही उसे गिरफ्तार कर लिया जाता।

यह तो स्पष्ट ही है कि मुखबिरो की सहायता के बिना ही पुलिस अधिक-से-अधिक शान्तिकारियों को पकड़ना चाहती थी। उसने बहुत से ऐसे भी व्यक्तियों को पकड़ा था और उन पर पड़्यन्त्र-अभियोग भी चलाया था जिनका दल के साथ हमदर्दी के सिवा और कोई सम्बन्ध नहीं था। दिल्ली पड़्यन्त्र-अभियोग में उसने मास्टर हरद्वारीलाल, भागीरथ, रत्नदत्त आदि कई व्यक्तियों को शामिल किया था जिनके विरुद्ध पड़्यन्त्र-अभियोग झूठा साबित हो जाने के बाद तथा कोई और अभियोग न लग सकने के कारण उन्हें छोड़ देना पड़ा। फिर पुलिस ने तिवारी को पकड़ा तक नहीं जिसके विरुद्ध गम्भीर आरोप थे। क्या यशपाल पुलिस की इस असमर्थता का उत्तर दे सकते हैं?

(९) रामचन्द्र मुसद्दी ने एक लेख में लिखा है कि २६ फरवरी १९३१ को वह एक बारात में बानपुर से बनारस जा रहे थे। उन्हीं के डिव्वे में तिवारी भी आ बैठा। मुसद्दी के पूछने पर भी उसने नहीं बताया कि वह कहा जा रहा था? प्रातः काल गाड़ी इलाहाबाद पहुँची और मुसद्दी ने चोरी की भाँति तिवारी को गाड़ी से उतरते देखा। दो दिन पहले तिवारी ने आजाद को गाड़ी में

कानपुर से इलाहाबाद आते देखा था। यह बात आजाद ने इलाहाबाद में अपने कुछ साथियों को बताई थी जिनमें सुशीला दीदी भी थी।

(१०) मैं यशपाल को स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि जनवरी १९३२ में वह मेरे घर के सामने देवीप्रसाद शर्मा के यहाँ आये थे और उन्होंने स्वयं मुझे आजाद की मृत्यु के बारे में इस प्रकार बताया था, “फरवरी को दल की बैठक इलाहाबाद में हुई थी जो उसी दिन समाप्त हो गई थी। दल के कुछ सदस्य इलाहाबाद से अपने-अपने घरों को चले गये थे। आजाद ने मुझे और सुखदेव को दूसरे दिन प्रातः आठ बजे अल्फ्रेड पार्क में बुलाया था। वहाँ एक वृक्ष के नीचे हम तीनों मिले थे। अभी हम बातें कर ही रहे थे कि पार्क के बाहर यूइंग क्रिश्चन कालेज की ओर जाने वाली सड़क पर मैंने वीरभद्र तिवारी को साइकिल पर जाते देखा। मैंने तुरन्त आजाद का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करते हुए कहा, ‘भैया, देखो तिवारी जा रहा है।’ आजाद ने देखा और कहा, ‘जाने दो साले को।’ जब मैंने भैया से कहा कि यहाँ से कहीं और चलो तो उन्होंने उत्तर दिया, ‘मैं तिवारी से नहीं डरता, वह साला मुझे धोखा नहीं देगा।’ मैं तो पाँच मिनट बाद वहाँ से चला गया। लेकिन मैं इलाहाबाद चौक में ही था कि पार्क में गोली चली और किसी भ्रान्तिकारी के मारे जाने की सूचना मिली। मैं समझ गया कि भैया मारे गये।” यशपाल का दिया हुआ विवरण उस दिन से ही मेरे स्मृति-पटल पर अमिट रूप से अंकित हो गया है।

(११) आजाद की मृत्यु के पश्चात् यह खबर फैल गई थी कि तिवारी ही उनकी मृत्यु का कारण था। तिवारी पर दो बार गोली भी चलाई गई, परन्तु तिवारी ने अपनी सफाई में कोई बयान नहीं दिया। वे भी कैसे सकता था, मन में चोरी जो थी—और अब भी है।

(१२) तिवारी की आर्थिक अवस्था १९३० तक ठीक नहीं थी। आजाद की मृत्यु के पश्चात् वह खुशहाल कैसे हो गया ?

एक और दस्तावेज : सुखदेवराज

२७ फरवरी सन् १९३१ को चन्द्रशेखर आजाद की शहादत के बाद नॉटवावर ने पुलिस रिपोर्ट इस प्रकार दर्ज की (रिपोर्ट अंग्रेजी में थी, यह हिन्दी अनुवाद है) :

“आज ६।। बजे सुबह ठाकुर विशेशर सिंह, डैपुटी सुपरिण्टेण्डेंट ऑफ पुलिस सी आई डी का सवाद मिला कि उसने अल्फ्रेड पार्क में एक व्यक्ति

को देखा है, जिसका हुलिया फरार आन्तिकारी चन्द्रशेखर आज़ाद से मिलता है। मैं अपनी गाड़ी में दो सशस्त्र कास्टेबल मोहम्मद जमाल और गोविन्दसिंह को लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ सवादिया विशेशर सिंह को छोड़ आया था। वहाँ बिशेशरसिंह नहीं मिला। सवादिया ने घास पर बैठे दो आदमियों की तरफ इशारा किया और बताया कि ठाकुर बिशेशर सिंह उन्हीं का पीछा कर रहा था। मैं गाड़ी से उतरा और अपने दोनों साथियों के साथ उन आदमियों की तरफ बढ़ा। १० गज के फासले पर से मैंने पूछा तुम लोग कौन हो? इसके उत्तर में दोनों ने पिस्तौल निकाल लिए और जल्दी-जल्दी गोलियाँ चलाने लगे। मेरे पास भी पिस्तौल तैयार थी और मोटे व्यक्ति को पिस्तौल निकालते देखकर मैंने भी गोली चलाई। शायद क्षणभर उन लोगों से पहले मेरी गोली उसकी जाघ में लगी, जिससे वह उठ नहीं पा रहा था। एक गोली और मैंने भी चलाई, जो उसके शरीर पर लगी। उसका साथी फुर्ती से उठ खड़ा हुआ और अपनी पिस्तौल की सारी गोलियाँ चलाकर भाग गया। मेरे दोनों साथियों ने मोटे व्यक्ति पर गोलियाँ चलाना शुरू कर दिया था। मैं अपनी पिस्तौल में से मैग्जीन निकाल रहा था, ताकि और गोलियाँ भर सकूँ। इसी बीच मोटे आदमी की एक गोली मेरी बायीं बांह में लगी और मेरी मैग्जीन हाथ से गिर पड़ी। तब मैंने १० गज दूर एक पेड़ की आड़ ले ली। मोटे व्यक्ति ने भी शीघ्र ही एक दूसरे पेड़ की आड़ सरक कर ले ली। दोनों कास्टेबल, जो मेरे साथ थे, लाईं में कूद गये। चन्द मिनटों बाद ठाकुर बिशेशरसिंह ने गाड़ी के पीछे से ५०-६० गज सरकते हुए जाकर मोटे व्यक्ति पर गोली चला दी। मोटे आदमी ने भी उत्तर में गोलियाँ चलाई, जो बिशेशरसिंह के मुँह पर लगी।

“मैं पिस्तौल में और गोलियाँ भर नहीं पा रहा था, क्योंकि मोटा व्यक्ति पेड़ के पीछे से मेरे ऊपर लगातार गोलियाँ चला रहा था। आखिर वह पीठ के बल गिर गया। मैं नहीं समझा कि उसे अभी कुछ हुआ, या पहले की गोलियों के कारण मर गया। इस समय तक बहुत-से लोग जमा हो गये थे। इसी समय एक आदमी, जिसे मैं नहीं पहिचानता था, एक भारी बटूक लेकर मेरे पास आया। उसे मैंने कहा कि मोटे व्यक्ति की टांगों पर बटूक चलाओ, क्योंकि मुझे निश्चय नहीं था कि वह मर गया है। उसके बाद मैंने जाकर देखा कि वह व्यक्ति मर गया था। उसका साथी भाग चुका था। मैं नहीं जानता कि उसको कोई गोली लगी थी या नहीं।”

उक्त रिपोर्ट में से मोटे अक्षरों वाला हिस्सा यमपाल ने निकाल दिया है।

नॉटबाबर की उक्त रिपोर्ट से यह बातें स्पष्ट हो जाती हैं कि दोनों व्यक्तियों ने नॉटबाबर को देखकर पिस्तौलें निकाल ली थीं ।

दोनों व्यक्तियों ने जल्दी-जल्दी गोलिया चलाना शुरू कर दिया था ।

आजाद और उसके साथी को गोली चलाता देखकर नॉटबाबर ने पहली गोली चलाई । नॉटबाबर की पहली गोली आजाद की जाघ में लगी, क्योंकि वह उठ नहीं पा रहा था । आजाद की गोली लगते से नॉटबाबर की मैग्जीन गिर गई । मैग्जीन जब हाथ से छूटकर गिरी, नॉटबाबर पेड की आड़ में भागा । उसी वक्त आजाद सरकते हुए दूसरे पेड की आड़ में हो गया । उसका साथी फुर्ती से उठ खड़ा हुआ और पिस्तौल की सारी गोलिया चलाकर भाग गया । नॉटबाबर और उसके साथी आजाद और उसके साथी पर गोली चलाते रहे । नॉटबाबर के साथियों ने खाई में छुपने के लिए छलाग लगा दी । चन्द मिनटों के बाद एक भाड़ी के पीछे में आकर आजाद के ऊपर बिशेशरसिंह ने गोली चलाई । आजाद ने उसके उत्तर में गोली चलाई, जो बिशेशरसिंह के मुह पर लगी । नॉटबाबर को निश्चय नहीं था कि आजाद के साथी को गोली लगी थी या नहीं । उसका साथी गायब हो चुका था । पुलिस और क्रान्तिकारियों का मुकाबला तब तक होता रहा जब तक दोनों की पिस्तौलों में गोलिया शेष थी । दोनों तरफ पिस्तौलों में गोलिया समाप्त होने पर ही लड़ाई रुकी । लड़ाई रकते ही दोनों पार्टिया छिपने का स्थान ढूँढने लगी । नॉटबाबर पेड के पीछे छिप गया, उसके साथी खाई में जा कूदे । क्रान्तिकारी उस पेड की आड़ में हो गये जिसके नीचे वे बैठे थे । आजाद इतने जल्दी हो चुके थे कि उनका भाग पाना सम्भव नहीं था, क्योंकि तीन गोलिया लग चुकी थी ।

ऐसी स्थिति में आजाद ने स्वयं ही आग्रह किया कि मैं (सुखदेव राज) भाग जाऊ, मेरे पास तीन गोलिया जेब में थी । यदि और भर सकने का समय भी होता तो भी गोलिया काफी न होने के कारण लड़ाई जारी रखना नामुमकिन था ।

यशपाल ने अपने लेखों में मेरा भाग जाना एक कायरतापूर्ण बात कही है, यह बात सिर्फ व्यक्तिगत द्वेष की भावना से लिखी है ।

एक वर्ष बाद भाई यशपाल पुलिस द्वारा इलाहाबाद में एक मकान के अन्दर घिर गये थे । जब पुलिस के दल ने दरवाजा खटखटाया तो सावित्रीदेवी ने, जिसके यहा यशपाल ठहरा हुआ था, दरवाजा खोला । पुलिस ने सावित्रीदेवी को बता दिया हम पुलिस के लोग हैं, दरवाजा खोलिये । सावित्रीदेवी ने

बुद्ध समय तक दरवाजा नहीं खोला और यशपाल को पर्याप्त अवसर दिया कि पुलिस के मुकाबिले की तैयारी कर ले । यशपाल के पास तीन पिस्तौलें और सप्रह गोलिया मिली । यशपाल ने अपने सस्मरणों में लिखा है कि मैंने सावित्री देवी से कहा कि तुम दरवाजा खोल दो, 'आई विल फाइट ।' जब सुपरिटेण्डेण्ट पुलिस पिन्डिच और सिपाही मकान के अन्दर घुसे यशपाल ने पीछे के अघेरे कमरे में जाकर तीन गोली हवा में चलायी । जब पुलिस आगे बढ़ी तो यशपाल ने पिस्तौल पुलिस के सामने फेंक दी और हाथ उठाकर कहा—मैं निशस्त्र हूँ, मुझे गिरफ्तार कर लीजिये ।

अपने गुरु जयचन्द विद्यालवार को और भाई परमानन्द को तथा दूसरे श्रान्तिकारियों को तथा वैशम्पायन को वायर कहने वाला यशपाल अब अपने गिरेबा में मुह डालकर अपनी वस्तुतः स्वयं परसे ।

दुर्गा भाभी का वक्तव्य

यशपाल के लेख के प्रकाशन के बाद पाचजन्य के सम्पादक श्री वचनेश जी ने दुर्गा भाभी से इण्टरव्यू लिया और सुखदेव राज पर लगाये गये आरोपों के सम्बन्ध में जानकारी चाही । जो उत्तर उनको दुर्गा भाभी ने दिये वे बहुत स्पष्ट हैं । उन्होंने कहा कि सुखदेव राज ने आजाद को गिरफ्तार कराने में किसी प्रकार का सहयोग अंग्रेजों को नहीं दिया तथा पार्टी के साथ किसी प्रकार का विश्वासघात नहीं किया । दुर्गा भाभी ने कहा कि वीरभद्र को अधिकांश लोग गद्दार मानते थे । चरित्र और पैसे की गडबडी के सम्बन्ध में दुर्गा भाभी ने और भी स्पष्ट शब्दों में कहा कि आजाद को और पार्टी को स्त्री और पैसे की बातों ने बहुत उलझन में डाला । सुखदेव राज कभी भी इसका कारण नहीं बना, बल्कि 'दूसरे लोग ही इसका कारण रहे ।'

जो चरित्र-हत्या का प्रयास यशपाल ने मेरे तथा वैशम्पायन के विरुद्ध किया है उस सम्बन्ध में भाभी ने अत्यन्त खुली भाषा में कहा है कि यशपाल के अलावा दूसरे साथियों के पास केवल कगाली है, साधनहीनता है, प्रेस की शक्ति नहीं है । दूसरे श्रान्तिकारियों को हीन सिद्ध करने की कोशिश अनुचित है । ऐसा कीचड़ उधालना असोभनीय है ।

यशपाल ने भाभी को इस कीचड़ में घसीटने का जो प्रयास किया है उसका मुझे बहुत ही दुःख है । भाई भगवतीचरण हमारे पूज्य थे । श्रान्तिकारी आन्दोलन के एक वरिष्ठ नेता थे । वह हमारी श्रद्धा के पात्र हैं । यशपाल अपने द्वेष के सामने किसी छोटे बड़े का लिहाज नहीं करता । आज ३८ वर्षों

के बाद गड़े मुर्दे उखाड़ कर साथियो को गाली देने से जो स्थिति पैदा हुई है वह यशपाल के लिए शोचनीय है। वचे-खुचे सभी श्रांतिकारी आज एक आवाज से यशपाल की निंदा कर रहे हैं।

[श्री सुखदेव राज ने यशपाल के एक और आरोप का भी उत्तर दिया है और जस्टिस भिडे के फैसले का अंश भी अपने समर्थन में उद्धृत किया है। क्योंकि यशपाल का आरोप भी मुख्य प्रसंग से सम्बन्ध नहीं रखता इसलिए इस वक्तव्य का वह अंश भी छोड़ दिया गया है। —सं०]

यशपाल की चरित्र-हत्या का सबसे पहला शिकार हुआ वीरभद्र तिवारी, जिसकी सफाई आज वह स्वयं दे रहे हैं। यशपाल ने सिंहावलोकन में लिखा है कि वीरभद्र खुफिया पुलिस इन्स्पेक्टर पण्डित शम्भूनाथ का केवल पड़ोसी ही नहीं था बल्कि ऐसी धारणा थी कि दोनों परिवारों में काफी सौहार्द्र और सम्बन्ध भी था। आजाद के मन में यह सदेह हो गया था कि वीरभद्र विश्वास-घाती है। आजाद ने तय कर लिया कि वीरभद्र तिवारी को गोली मार देनी होगी। उन्होंने मुझसे कहा कि 'वीरभद्र बहुत ही घूर्त और तेज आदमी है। इस अवसर पर तुम मेरे साथ रहना।' मैं तैयार हो गया। यह खयाल मुझे आया कि वीरभद्र ने बहुत आड़े समय मेरी सहायता की है और मुझ पर उसका एहसान है, लेकिन दल के साथ वीरभद्र के उचित व्यवहार न करने के प्रमाण भी मौजूद थे। जो तीन प्रमाण मैंने ऊपर दिये हैं वे पुलिस के रिकॉर्ड और ऑल इण्डिया रिपोर्टर में दर्ज हैं। दुर्गा भाभी का वक्तव्य मुझे स्वयं बचनेश जी से प्राप्त हुआ। यशपाल साथियों से द्वेष के कारण चरित्र-हत्या करने में कितने कमीनेपन पर उतर आया है, ये उसके उदाहरण हैं।

वक्तव्य : वीरभद्र तिवारी

गोपनीयता और सतर्कता के आवरण में कार्य करने वाले विप्लववादियों के संगठन में यह सदैव होता रहा है कि लोग एक-दूसरे से प्रायः अपरिचित रहते हैं। केवल कुछ शीर्षस्थ नेता ही सबको जानते हैं। इससे कभी-कभी भ्रान्तिया उत्पन्न हो जाती हैं।

सन् १९३० की बात है—क्रान्तिवारी दल के क्रिया-व्युत्पाद के सम्बन्ध में और कानपुर में, जहाँ कि हम लोगों ने धीरे धीरे एक बड़ा और सुसंगठित अड्डा बना लिया था, कोई "एक्शन" करने के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत मतभेद हम लोगों के बीच चल ही रहा था। जहाँ कुछ साथी वही भी, कुछ भी करने को उतावले थे वहाँ मेरी राय में कानपुर में कुछ कार्यवाही करने का अर्थ

हमारे छिपकर रहने और बम-फैवटरी चलाने की योजना का अन्त कर देना होना । इसके अतिरिक्त वैयक्तिक स्पर्धा भी न्यूनाधिक मात्रा में हम लोगों के बीच चलती रहती । कभी वह उत्तर भारत और बंगाल की तुलना का रूप ले लेती और कभी नई उम्र के नौजवानों तथा जवानी को गवा रहे प्रौढ़ों के बीच उत्साह और कर्मठता की मात्रा का रूप ग्रहण कर लेती ।

वाइसराय लॉर्ड इरविन की ट्रेन उड़ाने की योजना सफल हो चुकी थी । भाई भगवतीचरण की बम-परीक्षा में मृत्यु तथा भगतसिंह के कारावास-मुक्ति दिलाने के प्रयत्न में तत्सम्बन्धी यशपाल की कथित लापरवाही, गैर-जिम्मेदारी एवं निष्क्रियता आदि ने आजाद को क्षुब्ध कर दिया था । यशपाल पर उनके क्रोधानल को हवा दी कैलाशपति और धन्वन्तरि ने । क्योंकि दल ने यशपाल को प्राण-दण्ड के लिए गोली भार देने का निर्णय लिया था इस प्रयोजन के लिए यशपाल को केन्द्रीय कमेटी की आवश्यक बैठक के लिए प्रातः की ट्रेन से कानपुर पहुँचने का सन्देश कैलाशपति द्वारा ही मिला था । लेकिन मैंने और सद-गुरुदयाल अवस्थी ने यशपाल को आगाह कर दिया और यशपाल वापस लौट गये । कैलाशपति और दूसरे साथी यशपाल को दिल्ली में देखकर स्तब्ध रह गये । यशपाल के कानपुर चले जाने का विश्वास हो जाने के बाद कैलाशपति ने साथियों को यशपाल के प्राण-दण्ड की बात बताकर उनके लौटने की आशा न करने को कह दिया था ।

इधर कानपुर में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा राजनैतिक स्तर पर कुछ ऐसी बातें हो उठी थीं जिनसे लगता था कि बैठकर गम्भीरता से विचार किया जाये । दल का काम चन्दे से चलता था । धन का स्रोत सूख-सा गया था । धनाभाव से दल पीडित था । डकैती के सिवाय और कुछ न सूझता था । कानपुर के एक कच्छी आदमी को लूटकर धन लाने की योजना आजाद ने बनाई । मैंने और सदगुरुदयाल अवस्थी ने असहमति व्यक्त की, क्योंकि जरा-सी अमावधानी से दल खतरे में पड़ जाता और कानपुर जैसा क्रान्ति-केन्द्र विध्वस्त कर दिया जाता । इन्हीं कारणों से धीरे-धीरे गलतफहमियाँ बढ़ती गयीं । सितम्बर सन् ३० में मैं नमक-सत्याग्रह में, कच्छी डकैती के पूर्व ही, जेल चला गया, जहाँ मुझे चार मास की सजा हुई । कानाफूसी हुई कि मैंने डकैती में हिस्सा न लेने के कारण और इससे बचने के लिए अपनी गिरफ्तारी आयोजित की थी । इस बात से भी आजाद को मुझ पर खीझ हुई । मेरे प्रति उनका सन्देह और क्रोध बढ़ा । मैं केन्द्रीय सचालक समिति का सदस्य, दल के मुख्यालय तथा बम-

फैक्टरी का सत्यापक और उत्तरप्रदेश में दल का सगठक था। मेरे जेल चले जाने के बाद श्री सुरेन्द्र पाण्डे को, जो लाहौर पड़्यन्त्र केस में थे (और जिनके मित्र ब्रह्मदत्त मिश्र सरकारी गवाह बन गये थे), आजाद को फिर अपने साथ लेना पड़ा।

इस ग्रुप ने एक गप गड़ी कि फैजाबाद जेल में नॉटवाबर मुझसे मिले, उनसे मैंने आजाद को पकड़वाने का वादा किया कि अवधि के पूर्व मुझे जेल से छोड़ा गया, फैजाबाद से इलाहाबाद मुझे इसीलिए भेजा गया कि मैं वहां आजाद को ढूँढ़ूं।

इसमें एक भी बात सच न थी। फैजाबाद जेल में मैंने चक्करबन्दी पर सत्याग्रह किया था, अतः मुझे नेता करार देकर वहां से मलाका जेल भेज दिया गया था।

आजाद इन बातों को सुनकर बीखलाते, यह स्वाभाविक ही था और इन्हीं सब बातों ने मेरे विरुद्ध आजाद के मन में गांठ डाल दी थी।

जनवरी १९३१ का महीना था। मैं अपनी चार माह की सजा की पूरी अवधि काटकर छूटकर आया। जेल से निकलते ही मैंने प्रयास किया कि आजाद से मेरी भेंट हो जाय और उनकी शका का निराकरण कर सकूँ, क्योंकि जेल से आने पर मैंने पाया

(१) साथी, वरिष्ठ कांग्रेसी नेता, पार्टी के प्रथमदाता सभी संशक।

(२) अवस्थी, मन्नीलाल पाण्डे, माशीमा, शिवचरण (मेकेनिक, वम फैक्टरी) ने मुझे यह स्थिति बताई।

(३) अरोड़ा जी विस्मित और व्यथित। मन्नीलाल पाण्डे द्वारा मैंने आजाद को भेंट के लिए पत्र भेजा, ताकि भ्रम दूर हो जाय।

(४) यशपाल से २६-२७ जनवरी को जब सहसा भेंट हुई तब उनसे भी मैंने यही आग्रह किया। यशपाल ने कहा, 'उनका (आजाद का) पारा गरम है। मेरे खिलाफ लोगों ने खूब भरा है, शान्ति होने पर मिलाऊंगा।'।

(५) कैलाशपति मुखविर होकर पुलिस को बयान दिये जा रहा था। पुलिस पंजाब की न जाने कब आ धमके और तलाशिया, गिरफ्तारिया शुरू हो जायें। इसके निवारणार्थ मैंने वम-फैक्टरी नष्ट की।

(६) मेरे इन सावधानी और मूखतापूर्वक किये गये कार्यों का भी अनर्थ लगाया गया। सी. आई. डी. से बचना मेरा प्रथम उद्देश्य था। ऊपर साथी मेरी टाह में थे।

(७) मैंने सी० आई० डी० इस्पेक्टर प० शम्भूनाथ तथा टीकाराम के पीछे पार्टी के वैतनिक जासूस लगा रखे थे—सनक, चन्द्रमौलि, जगन्नाथ आदि सरकार ने मुझे खतरनाक समझ मेरे पीछे इन दो अफमरो को लगा रखा था ।

इसी समय अकस्मात् ११ फरवरी को वैशम्पायन गिरफ्तार हो गया । सादे कपड़ों में भूरेसिंह कास्टेबिल ने उन्हें शिवचरण के मकान पर साइकिल का ताला खोलने को भुक्तते ही दबोच लिया और वैशम्पायन का रिवाल्वर छीन लिया । शिवचरण ने बताया कि वैशम्पायन मुझे लेने आये थे, ताकि आजाद से मेरी भेंट हो सकती ।

कैलाशपति के बयानों के आधार पर वैशम्पायन की पहली गिरफ्तारी उत्तरप्रदेश में हुई थी । उसके बाद ही शिवचरण भी गिरफ्तार हो गया था, जो बम फैक्टरी का कार्य देखता था । उसे इलाहाबाद ले जाया गया, जहाँ उसने पुलिस को बहुत महत्वपूर्ण बयान दिया था । उसका बयान मि० कादरी मजिस्ट्रेट के समक्ष कलम-बंद कराया गया ।

माशीमा से मुझे पता चला था कि आजाद इलाहाबाद में ही बही है । शिवचरण के पुलिस द्वारा इलाहाबाद ले जाने के कारण मेरा माथा ठनका और मैंने आजाद से मिलने की ठानी । उनसे प्रातः छोड़ कर अन्यत्र जाने का अनुरोध करने के लिए मैं इलाहाबाद गया था ।

२६-२७ जनवरी (मूल में जनवरी ही लिखा गया है, लेखक का आगम्य बदायित् फरवरी है ।—स०) की रात फरारी अवस्था में जब मैं बानपुर स्टेशन पर था तो प्लेटफार्म पर अचानक श्री रामचन्द्र मुसद्दी मिल गये । उनके भाई की वाराणसी बजार में जा रही थी । उनके आप्रह पर उसमें मैं शामिल हो गया । २७ फरवरी को सुबह करीब ७ बजे मैं इलाहाबाद में गाड़ी से उतर कर वहीं रुक गया । मैं अपना गतव्य और न मतव्य किसी को बता सकता था । पुराने काप्रेसी, काबोरी के मित्र श्री दीतलासहाय के घर गया । नहा धो कर उनकी साइकिल ले कर बटरा सड़क से चला कि अभी करीब नौ-दस बजे दिन के मुना कि कोई प्रातिवारी मारा गया । यह और कोई नहीं आजाद ही थे । इससे राधा का विद्योह ही नहीं हुआ, मुझ पर सन्देहों का स्तूप टाढ़ा हो गया । वहाँ मैं उन्हें बचाने चला था, बहा घनकित हो गया । कुछ लोग जो मुझे घसपित करते हैं उनसे मैं क्या कहूँ ? यह जीवन का एक ऐसा दूर समय था कि हमने पहले मैं उनसे मिल सबूत यह एन्जेल पार्क में पुलिस से जूझते हुए वीरगति पा गये । मुझे अपन ऊपर विश्वास था कि आजाद से भेंट होत ही उन्हें समित

कर लूंगा। उनसे सदैव मुझे बड़ा शिष्ट सम्मान मिला था। इस प्रकार कुछ साथी जो मुझपर शक करते हैं उसे साथियों का मति-विभ्रम कहूँ या दैवी योग।

आज़ाद की शहादत के सम्बन्ध में कुछ पत्रिकाओं में हाल में मुझसे सम्बद्ध कुछ लेख छपे हैं, जो केवल सुनी-सुनायी बातों पर आधारित हैं, अथवा कुछ लोगो ने पूर्वाग्रह जनित भावनाओं पर अनुमान के साक्ष्य खड़े किये।

विप्लवकारियों के सम्बन्ध में उस समय न ऐसे नियम ही थे न ऐसी न्यायिक परम्परा का ही जन्म हो पाया था जिसके आधार पर किसी को कोई कैफियत देने का अवसर दिया जाता। कुछ समय पूर्व यशपाल ऐसे ही एक सनक पर एकतरफा मृत्युदंड के भागी बन चुके थे। कहना नहीं होगा कि मैंने केन्द्रीय समिति के सदस्यों के सामने भी और परोक्ष में भी इस तरह के कार्य के औचित्य को हृदयगम नहीं किया।

किन्तु विधि का क्रूर विधान कि वही परिस्थिति मेरे सामने आयी, जब कि आज़ाद के शहीद होने के तीन-चार मास के भीतर कानपुर से मुझे धोखे से बुला कर एक स्थान पर गोली चलायी गयी और दूसरी बार मेरे ऊपर गोली चलायी गयी।

इतिहास की वास्तविकता पर निष्ठा रखने वाले एक सत्य की शोध करने वाले जिज्ञासुओं के समक्ष अपनी बात को केवल इस प्रकार ही सक्षिप्त रूप में रखना चाहता हूँ कि वास्तविकता क्या थी। मेरी अपनी राय है कि सार्वजनिक वाद-विवाद करने का अवसर न तब था और न अब है। कुछ साथियों के रहस्यपूर्ण, सच्चाई से परे और नाटकीयता से भरे लेखों से केवल आत्मज्ञापन का ही प्रयोजन सिद्ध होता है। आज भी ७० वर्ष की आयु में मुझमें इतना नैतिक साहस है कि किसी भी चुनौती को स्वीकार करने को तैयार हूँ। शहीद-शिरोमणि चन्द्रशेखर आज़ाद के बलिदान की स्वयं में इतनी महत्ता है कि उसमें भद्दे और मिलावटी रंगों की बूची फेरने से कोई निखार आने को नहीं है। वह अमर हैं। आज तो अब अपनी ही सरकार है, उस समय के रिक्वाँर्ड, अधिकारी और प्रातिकारी भी मौजूद हैं, जिनसे वास्तविकता मालूम हो ही सकती है, सस्ती लोकप्रियता के अर्जुनार्थ ऐसे साथियों का अनुसरण, गोपनीयता से प्रतिश्रुत, प्राति से प्रतिबद्ध मैं भी रहूँ—यह न मेरे लिए शोभन है न शक्य। क्योंकि मैं ऐसे साथियों की कोटि का प्रसिद्ध प्रातिकारी न था जो केवल आदेश ही पालन करते थे। मैं तो केवल केन्द्रीय समिति का सदस्य तथा प्रादेशिक सगठक था, जिग पर सम्पूर्ण दल के संचालन का भार था।

वीरभद्र तिवारी के पत्र से कुछ बातें तो स्पष्ट हो जाती हैं, परन्तु 'दिनमान' में मैंने जो उसके विरुद्ध अनेक आरोप लगाये थे उनका उत्तर नहीं मिलता ।

तिवारी ने यह तो मान लिया कि २७ फरवरी को वह प्रातः काल इलाहाबाद में था और वह साइकिल पर अल्फ्रेड पार्क के सामने कूटड़ा गया था । उसने यह भी मान लिया कि जब आज़ाद कच्छी वाला मनी एक्शन करने वाले थे तो वह कांग्रेस सत्याग्रह में जेल चला गया था और यह भी कि वह कानपुर में कोई भी एक्शन न लेना चाहता था और न ही होने देता था । परन्तु उसने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया कि जिस समय कैलाशपति ने नवम्बर १९३० के आरम्भ से पुलिस को बयान देने आरम्भ कर दिये थे और तिवारी के विरुद्ध भी बहुत कुछ कह दिया था, उस समय तिवारी फैजाबाद जेल में था, उसे क्यों नहीं गिरफ्तार किया गया ।

कैलाशपति के बयानों के बाद नवम्बर में विद्याभूषण बनारस में पकड़े जा चुके थे, मैं दिसम्बर में कानपुर में गिरफ्तार हो गया था और वैशम्पायन जनवरी में कानपुर में पकड़ा गया था । आश्चर्य तो यह है कि ब्रह्मदत्त भी कानपुर में पकड़ा गया था, परन्तु तिवारी, जिसको कानपुर की सारी पुलिस तथा सी० आई० डी० पहचानती थी, वह फिर भी सरेआम फिरता रहा ।

मुझे दुःख है कि तिवारी के पत्र से भ्रम व सन्देह दूर न होकर बढ ही जाता है ।

परिशिष्ट-२

मैं इस परिशिष्ट में पण्डित जी के सम्बन्ध में कुछ साधियों के मत अथवा अनुभव संक्षेप में उद्धृत कर रहा हूँ। संक्षेप में इस कारण कि पुस्तक अन्यथा लम्बी हो जायगी।

कुछ पत्र जो दिनमान में छपे थे, वे भी यहाँ दिये जा रहे हैं।

डा० भगवानदास माहौर

“एक समय था जब श्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जाता था उसका रुमान अहिंसा नीति के मिथ्यात्व, व्यर्थ आदर्शवादिता तथा अव्यावहारिकता को स्थापित करना होता था और उसमें असहयोग या सत्याग्रह के कारण चार-छह महीने आराम से जेल काटने की तुलना में श्रान्तिकारियों की फाँसी और आजन्म काले पानी की यातनाओं को रखा जाता था। परन्तु आज हमें श्रान्तिकारियों के चरित्र में उनके मृत्यु-जर्मा साहस, सच्ची दम्भरहित देश भक्ति और स्वातन्त्र्य के लिये हँसते-हँसते सर्वस्व बलिदान करने की तत्परता के ही दर्शन करने की आवश्यकता है जो हमें अपनी स्वतन्त्रता को समाजवादी प्रगति के लिये और बाह्य शत्रुओं से अपने देश की रक्षा करने के लिये आवश्यक भावनात्मक धल प्रदान करे।

“श्रान्तिकारी आन्दोलन के लक्ष्य और आदर्श की सही समझ के बिना महान् श्रान्तिकारी शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद के कार्य को सही रूप में समझ नहीं जा सकता।”

विश्वनाथ वैशम्पायन

“जो लोग आजाद के प्रति यह आरोप करते हैं कि उन्होंने जीवन के अन्तिम दिनों में अहिंसावाद को आजादी का सही रास्ता बताया, यह गलत है। ऐसे लोगों ने आजाद के प्रति ईमानदारी नहीं करती। इन्हीं दिनों उन्होंने मुझसे कहा था कि देश तो एक न एक दिन आजाद होगा ही, उस दिन तक यदि तुम (वैशम्पायन) जीवित रहो, तो मेरे घर जाकर मेरी मा से मिल लेना। आजाद का क्रान्तिकारी दल के सिद्धान्तों और कार्यप्रणाली में कभी अविश्वास नहीं हुआ। वह देखने में साधारण थे पर उनका प्रत्येक कदम अनुकरणीय था। वह जन्मजात नेता थे। जीवन में वह सबसे ज्यादा बल देते थे चारित्र्य पर। उनका कहना था कि जिसने इसे खोया उसका पतन निश्चित है। चरित्रहीन व्यक्ति से उन्हें घृणा थी। इसी को लेकर उन्होंने पार्टी भंग कर दी थी। उनके मुंह से कभी ईश्वर का नाम नहीं सुना और न कभी उन्होंने उसकी दुहाई दी। अपने पौष्ट्य पर उन्हें पूर्ण भरोसा था।

“आजाद की बातों में कभी मायूसी नहीं होती थी और न ही उन्होंने कभी क्रान्तिकारी दल के सिद्धान्तों पर अविश्वास दिखाया।

“पारिवारिक जीवन से आजाद का कोई विशेष लगाव नहीं था, पर जिस परिवार में भी वह रहते थे उसी के लोग उनका अधिकार सहज ही मानते थे।

“उनकी वेश-भूषा सीधी-सादी होती थी, वही उनको पुलिस की आंखों से बचाती थी। हा एक्शन के समय वह चूड़ीदार पायजामा और टोपी की जगह साफा बांधते थे।

“आजाद का नियम था कि जब तक साथी खा न लेते वह स्वयं नहीं खाते थे। आर्थिक व्यवस्था तो बहुत ही दयनीय थी। कभी पकौड़ी और कभी चने एक-एक आने के खरीद कर पानी के साथ अपनी भूख को मिटा लिया करते थे। दिन में दो बार भोजन तो एक नियामत होती थी, जो कभी-कभी मिलती थी। इससे आजाद सबसे बाद में खाते और परिस्थिति गम्भीर देखते तो यह देते कि भूख नहीं है।”

यशपाल

“आजाद को अच्छी-बुरी पुस्तकें लाकर साथियों को पढ़ाने का बहुत शौक था। परन्तु उपन्यास या यौन विषय (Sex) सम्बन्धी पुस्तकें देना वह

उन्हें बहुत चिढ़ उठती थी। ग्रन्थार्थ का एक बहुत ही रूढ़िवादी आदर्श उस समय तक आज़ाद के मष्तिष्क में था। आज़ाद को नारी, प्रेम और सौन्दर्य की चर्चा से भी चिढ़ हो गई थी। वह कहते थे सिपाही को औरत से क्या मतलब !

“आज़ाद को अंग्रेज सरकार से समझौते का विचार भी असह्य था। उनका कहना था कि अंग्रेज जब तक इस देश में शासक के रूप में रहेंगे हमारी उनसे गोली चलती ही रहनी चाहिये। समझौते का कोई अर्थ नहीं है। अंग्रेज से हमारा एक ही समझौता हो सकता है कि वे अपना बोरिया-बिस्तर सभाल कर यहाँ से चल दें।

“आज़ाद समाजवादी लक्ष्य को स्वीकार करते थे। वह लक्ष्य था, देश की ऐसी स्वतन्त्रता जिसमें देश के सभी व्यक्तियों को जीविका उपाजन और जीवन के विकास का समान अवसर हो।

“अहिंसा सन्नाम के बड़े-से-बड़े कमाण्डर भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि आज़ाद ने हमारी इस गिरी हुई हालत में साहस, निर्भयता और बलिदान का जो आदर्श पेश किया है, वह हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में मार्ग दिखलाने वाले स्तम्भ की तरह खड़ा है।”

दुर्गा भाभी

(दुर्गा भाभी भगवतीचरण बोहरा की धर्म-पत्नी हैं। उनका आज़ाद से परिचय १९२६ के आरम्भ में हुआ था और अन्तिम भेंट इलाहाबाद में आज़ाद की मृत्यु से एक दिन पहले २६ फरवरी १९३१ को हुई थी।)

“मेरा जय सबसे पहला परिचय आज़ाद से हुआ तो मैंने उस दिन ही मानवता का ज्वलन्त प्रतीक पाया। निर्भय चेहरा, आँखों में अनोखा तेज और गरलता थी। व्यवहार सीधा-सादा और सौम्यतापूर्ण। उनके व्यक्तित्व में एक गहरी छाप थी, प्रेरणा थी, उत्साह था और देश की स्वाधीनता पर सब कुछ निछावर कर देने का भूक आह्वान था। निबट आने पर मैंने उन्हें दो विरोधी शक्तियों का एक ही स्रोत समझा। ज़ामें बढास्ता और बोमनता दोनों ही असीम थी। वह एक पलावार थे जिनका धनर-बाहर सभी पवित्र था, जिसका हृदय अत्यन्त बोमन था, किन्तु वृत्तव्य उतना ही बढोर। आज़ाद का व्यक्तित्व इतना ऊँचा और शक्तिशाली था कि वह बिना किसी प्रपच के अपने अन्तिम दिन तक सब के एकमात्र नेता तथा गैरगणित बने रहे। उनमें नांग टगने थे, प्यार करते थे और उनके बिना कोई दिन भी नहीं शिना गया था।”

सुशीला मोहन (दोबी)

“एक बार हमारे एक साथी ने भैया (आजाद) से मजाक में कह दिया, ‘भैया आप तो मोटे होते जा रहे हैं। सरकार को आपकी कलाई के लिए शायद कोई विशेष हथकड़ी तैयार करानी पड़ेगी।’ इतना कहना था कि भैया का चेहरा लाल हो गया। उन्होंने तमक पर उत्तर दिया, “आजाद की कलाई में हथकड़ी लगना अब विलुप्त असम्भव है। एक बार सरकार लगा चुकी। अब तो शरीर में दुकड़े-दुकड़े हो जायेंगे लेकिन जीवित रहते पुलिस आजाद को बन्दी नहीं बना सकती।”

“मैं (दीदी) ने आजाद के सम्मुख प्रस्ताव रखा था कि लाहौर पड़्यन्त्र अभियोग, जिसमें मैं फरार थी, यदि पुलिस को अपने को सौंप दू तो बक्सी की राय में भगतसिंह का मुबदमा लम्बा किया जा सकता है। परन्तु आजाद ने मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। हा उन्होंने मुझे और दुर्गा भाभी को गांधी जी के पास यह सन्देश देकर अवश्य भेजा था कि यदि गांधी जी भगतसिंह और दत्त की फाँसी को मन्सूफ करा सकें और चलने वाले मुबदमों को वापस करा सकें तो आजाद अपनी पार्टी सहित अपने को गांधी जी के हाथों में सौंप सकते हैं। परन्तु गांधी जी ने इन शर्तों को न तो उचित ही समझा और न सम्भव ही।

“आजाद के व्यक्तित्व, त्याग, लगन और चरित्र ने हर एक व्यक्ति को प्रभावित किया जो उनके सम्पर्क में एक बार भी आ गया। वह पक्के अनुशासन को मानने वाले थे। उनका चरित्र दहकते हुए अगारे के समान ज्योतिर्मय और शुभ्र ज्योत्सना के समान उज्ज्वल था। पार्टी में उनका आदेश था कि कोई भी सदस्य स्त्री-जाति को बुरी नजर से नहीं देख सकता है वरना आजाद की पहली गोली का वही शिकार होगा।

“वह सोते-सोते साथियों को जगाकर योजनाओं पर विचार करने लगते थे। मैंने कभी उनसे शिकायत की तो वह मुझे ताना दिया करते थे कि यह नमक सत्याग्रह नहीं कि भण्डा उठाया, नारे लगाये और जेल चले गये। ये क्रान्तिकारियों की योजनाएँ हैं इन पर काफी विचार करना पड़ता है। जनता का पैसा वह धरोहर समझते थे। अपने ऊपर उन्होंने कभी पांच पैसे भी नहीं खर्च किये। वह नहीं चाहते थे कि पार्टी का कोई भी सदस्य कभी सिनेमा, खेल-तमाशे देखे। क्योंकि वह तो जनता की अमानत का दुरुपयोग है। भैया की बुद्धि बड़ी तीव्र थी जिसकी वजह से पुलिस गुप्तचर भी भय खाते थे।”

उन्हें बहुत चिढ़ उठनी थी। ग्रहचर्य का एक बहुत ही रूढ़िवादी आदर्श उस समय तक आज़ाद के मण्डिष्क में था। आज़ाद को नारी, प्रेम और सौन्दर्य की चर्चा में भी चिढ़ हो गई थी। वह कहते थे सिपाही को औरत से क्या मतलब।

"आज़ाद को अंग्रेज सरकार से समझौते का विचार भी असह्य था। उनका कहना था कि अंग्रेज जब तक इस देश में शासक के रूप में रहेंगे हमारी उनसे गोली चलती ही रहनी चाहिये। समझौते का कोई अर्थ नहीं है। अंग्रेज में हमारा एक ही समझौता हो सकता है कि वे अपना दोरिया-विस्तार सभाल कर यहाँ में चल दें।

"आज़ाद समाजवादी लक्ष्य को स्वीकार करते थे। वह लक्ष्य था, देश की ऐसी स्वतन्त्रता जिसमें देश के सभी व्यक्तियों को जीविका उपार्जन और जीवन के विकास का समान अवसर हो।

"अहिंसा मग़्राम के बड़े-से-बड़े कमाण्डर भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि आज़ाद ने हमारी इस गिरी हुई हालत में साहस, निर्भयता और बलिदान का जो आदर्श पेश किया है, वह हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में मार्ग दिखाने वाले स्तम्भ की तरह खड़ा है।"

दुर्गा भाभी

वनाने वाली क्रान्ति इनका परम लक्ष्य रही और उसकी प्राप्ति के लिये किये गए अमित बलिदान को भी इन्होंने मातृभेदी पर तुच्छ भेंट समझा ।

“दुनिया वालों ने उन्हें सिर फिरे लोग, पागल, दीवाना, और क्या क्या नहीं पुकारा, किन्तु उन्होंने यह चिन्ता कभी नहीं की कि लोग उन्हें क्या कहते हैं । वे अपने मार्ग पर आस्था और अडिगता के साथ निरन्तर आगे-आगे चलते गये । ‘कर्मण्येवाधिवास्ते’ के वे प्रतीक थे, फल की अभिलाषा, परिणाम की चिन्ता उन्हें बतई नहीं ।

“आज देश स्वाधीन है । उनका स्वप्न साकार हुआ है । वही हम उन्हें भूल न जायें । जिन हुतात्माओं का देश की स्वाधीनता में महान् योग है, उन्हें विस्मृत कर देना घोर वृत्तघ्नता होगी ।”

आजाद की मृत्यु : कौन जिम्मेदार ? दिनमान ३ दिसम्बर '६७ : अध्यापक नन्दविशोर निगम के लेख के लिए धन्यवाद ।

—मन्मथनाथ गुप्त, नयी दिल्ली

नन्दविशोर जी निगम ने जो कुछ भी प्रस्तुत किया है वह अपने-आप में सग्रहणीय तथा प्रशसनीय है । लेकिन परोक्ष रूप से उनका आजाद को कुभाषिया सिद्ध करने का प्रयास मुझे काफी खटका है ।

—सूरजप्रसाद मिश्र, जमशेदपुर

उपन्यासकार श्री यशपाल न जाने क्यों श्री बीरभद्र तिवारी को दोष-मुक्त स्वीकार करते हैं । शायद, तिवारी ने गोली मारने के बजाय ‘आजाद’ के उस आदेश की अवहेलना करके जो यशपाल को जीवनदान दिया था उसी के फलस्वरूप आज तक ‘आजाद’ के साथ दगा किसने की ?—एक रहस्य बना रह गया ।

श्री निगम द्वारा दिये गये तर्कों में वास्तविकता की स्पष्ट झलक है, जब कि श्री यशपाल की लेख-माला में कई स्थानों पर भ्रम पैदा हो जाता है ।

—भगवान द्विवेदी, लखनऊ

मुझे प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारियों के विषय में ज्ञान के की उत्तुक्ता रही है । ‘सिंहावलोकन’ इस क्षेत्र में मेरा प्रमुख आधार रहा है । लेकिन श्री नन्द-विशोर निगम का ‘दिनमान’ में दोनों किस्त पढ़ कर ऐसा लगा मानो ‘सिंहावलोकन’ लेखक के स्वयं का ‘सिंहावलोकन’ रहा है, क्रान्तिकारियों और उनके दल का नहीं ।

‘सिंहावलोकन’ में लेखक शहीद भगतसिंह के व्यक्तित्व को पूरी तरह निगल चुका है, जबकि वह पूरे दल पर छाये हुए थे। यशपाल ने एक महान् क्रान्तिकारी के साथ अव्यवहारिकता की है। —नरेन्द्रसिंह बुन्देला, इन्दौर

आजाद की मृत्यु का जिम्मेदार कौन ? : प्रश्न केवल शहादत की जिम्मेदारी का नहीं था। प्रश्न था उस दुस्साहस का जिसने ३८ वर्ष पहले पार्टी को छिन्न-भिन्न करवाया और फिर साधनहीन क्रान्तिकारियों को लाञ्छित करने का यत्न किया—केवल निजी द्वेष और अर्थ को सिद्ध करने के लिए। इस सिलसिले में शुरू से आखिर तक सब प्रकाशित सामग्री को ध्यान से पढ़ने से नीचे दी हुई बातें ऊपर उठ आती हैं :

(१) यशपाल या तो स्मृति-विभ्रम के शिकार हैं या भ्रम फैलाना उनका मुख्य उद्देश्य ही है। भ्रमों का सिलसिला उनके ‘दिनमान’ के लेख तक भी चलना रहा है। (देखिए पृष्ठ आठ पर, जहाँ वह निगम के लेख के एक हिस्से का हवाला अपने को प्रमुख नेता जताने के लिए देते हैं।) यह हवाला वह तोड़-मरोड़ कर ही इस्तेमाल करते हैं।

(२) सुखदेवराज पर यशपाल ने जो चार आरोप थोपे थे उनका खडन तो सुखदेवराज ने सुन्दर ढंग से ‘दिनमान’ में अपने लेख और उससे पहले अक्तूबर के पाचजन्य में किया था। क्या यशपाल अपनी सच्चाई का दावा अब भी विश्वसनीय ही समझेंगे ?

(३) यशपाल युक्तिसंगत होने का दावा करते हुए भी अपने लेख में पुलिस अफसर ए० शम्भूनाथ और एन० सी० मिश्र को उद्धृत करके आग्रह करते हैं कि उन्होंने सब तरह से तमदीक कर के ही वैशम्पायन के सजा न पाने के बारे में कहा था। पुराने पुलिस अफसर चाहे यशपाल के कितने ही विश्वसनीय मित्र रहे हों यशपाल का उनके मुंह से अपने क्रान्तिकारी साथियों के विरुद्ध ऐसा भ्रम फैलाना शोभा नहीं देता।

(४) फिर एक प्रश्न यह उठता है कि यशपाल इक्य जय पकड़े मथे तब उन पर वायसराय की हत्या का प्रयास करने के अभियोग में—जिसकी सजा मौत ही थी—क्यों नहीं केस चलाया गया ?

(५) गड़े मुर्दे वैशम्पायन ने नहीं उखाड़े विवाद उठाया था वीरभद्र तिवारी ने, लल्लन प्रसाद ध्यास द्वारा लेख लिखवा कर। अतः वैशम्पायन पर यशपाल का यह आरोप भी गलत है।

(६) निगम के लेख में दिये गये दसवें कारण में यशपाल की बात ही दोहरायी गयी थी । सम्भव है यह बात यशपाल ने निगम को १९३२ में यह जताने के लिए कही हो कि आजाद वीरभद्र पर अविश्वास नहीं करते थे । अपनी कथाओं में दूसरे के मुह से अपनी बात कहलवाने की महारत तो यशपाल ने साबित कर ही दी है ।

क्योंकि 'दिनमान' ने इस प्रश्न को महत्त्व दिया था क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि उसके सम्पादक इस खोज को निष्कर्ष तक पहुँचाने के लिए इन शब्दों को भी यथासम्भव स्थान देंगे ?

—बलदेवराज महेंद्रा, बम्बई